ग्रंथ संख्या—१०७

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

तृतीय संस्करण

मूल्य १॥)

सं० २००४

मुद्रक

महादेव एन० जोशी

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

स्मृति की रेखाएँ

छोटे क़द और दुबले शरीर वाली भक्तिन अपने पतले ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और छोटी आंखों में एक विचित्र समझदारी लेकर जिस दिन पहले पहले मेरे पास आ उपस्थित हुई थी तब से आज तक एक युग का समय बीत चुका है। पर जब कोई जिज्ञासु उससे इस सम्बन्ध में प्रश्न कर बैठता है तब वह पलकों को आधी पुतलियों तक गिराकर और चिंतन की मुद्रा में ठुड्ढी को कुछ ऊपर उठाकर विश्वास भरे कण्ठ से उत्तर देती है 'तुम पचै का का बताई—यहै पचास बरिस से संग रहित हैं'। इस हिसाब से मैं पचहत्तर की ठहरती हूँ और वह सौ वर्ष की आयु भी पार कर जाती है, इसका भक्तिन को पता नहीं। पता हो भी तो सम्भवतः वह मेरे साथ बीते हुए समय में से रत्तीभर भी कम न करना चाहेगी। मुझे तो विश्वास होता जा रहा है कि कुछ वर्ष और बीत जाने पर वह मेरे साथ रहने के समय को खींच कर सौ वर्ष तक पहुँचा देगी चाहे उसके हिसाब से मुझे १५० वर्ष की असम्भव आयु का भार क्यों न ढोना पड़े।

शकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई सो जा कर देख आवे, यही कहकर और पहना उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसके पैरों में जो पंख लगा दिये थे वे गांव की सीमा में पहुँचते ही झड़ गए। 'हाय लछमिन अब आई' की अस्पष्ट पुनरावृत्तियां और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियां उसे घर तक ठेल ले गईं, पर वहां न पिता का चिह्न शेष था, न विमाता के व्यवहार में शिष्टाचार का लेश था। दुःख से शिथिल और अपमान से जलती हुई वह उस घर में पानी भी बिना पिये उल्टे पैरों ससुराल लौट पड़ी। सास को खरी-खोटी सुना कर उसने विमाता पर आया हुआ क्रोध शान्त किया और पति के ऊपर गहने फेंक फेंक कर उसने पिता के चिर बिछोह की मर्मव्यथा व्यक्त की।

जीवन के दूसरे परिच्छेद में भी सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जब उसने गेहुयें रंग और बटिया जैसे मुख वाली पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले तब सास और जिठानियों ने ओठ बिचका कर उपेक्षा प्रकट की। उचित भी था, क्योंकि सास तीन तीन कमाऊ वीरों की विधात्री बनकर मचिया के ऊपर विराजमान पुरखिन के पद पर अभिषिक्त हो चुकी थी और दोनों जिठानियां काकभुशुण्डी जैसे काले लालों की क्रमबद्ध सृष्टि करके इस पद के लिए उम्मीदवार थीं। छोटी बहू के लीक छोड़कर चलने के कारण उसे दण्ड मिलना आवश्यक हो गया।

जिठानियां बैठकर लोक-चर्चा करतीं और उनके कलूटे लड़के धूल उड़ाते; वह मट्ठा फेरती, कूटती, पीसती, रांधती और उसकी नन्हीं लड़कियां गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियां अपने भात पर सफेद राब रख कर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतार

सेवक-धर्म में हनुमान जी से स्पर्धा करने वाली भक्तिन किसी अञ्जना की पुत्री न होकर एक अनामधन्या गोपालिका की कन्या है—नाम है लछमिन अर्थात् लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन के कपाल की कुञ्चित रेखाओं में नहीं बँध सकी। वैसे तो जीवन में प्राय: सभी को अपने अपने नाम का विरोधाभास लेकर जीना पड़ता है, पर भक्तिन बहुत समझदार है क्योंकि वह अपना समृद्धि-सूचक नाम किसी को बताती नहीं। केवल जब नौकरी की खोज में आई थी तब ईमानदारी का परिचय देने के लिए उसने शेष इतिवृत्त के साथ यह भी बता दिया—पर इस प्रार्थना के साथ कि मैं कभी नाम का उपयोग न करूँ। उपनाम रखने की प्रतिभा होती तो मैं सब से पहले उसका प्रयोग अपने ऊपर करती इस तथ्य को वह देहातिन क्या जाने, इसीसे जब मैंने कण्ठी-माला देखकर उसका नया नामकरण किया तब वह भक्तिन जैसे कवित्वहीन नाम को पाकर भी गद्गद् हो उठी।

भक्तिन के जीवन का इतिवृत्त बिना जाने हुए उसके स्वभाव को पूर्णत: क्या अंशत: समझना भी कठिन होगा। वह ऐतिहासिक झूंसी में गांव-प्रसिद्ध एक अहीर सूरमा की इकलौती बेटी ही नहीं, विमाता की किम्वदन्ती बन जाने वाली ममता की छाया में भी पली है। पांच वर्ष की वय में उसे हँडिया ग्राम के एक सम्पन्न गोपालक की सबसे छोटी पुत्रवधू बना कर पिता ने शास्त्र से दो पग आगे रहने की ख्याति कमाई और नौ वर्षीया युवती का गौना देकर विमाता ने, बिना मांगे पराया धन लौटाने वाले महाजन का पुण्य लूटा।

पिता का उस पर अगाध प्रेम होने के कारण स्वभावत: ईर्ष्यालु और सम्पत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने उनके मरणान्तक रोग का समाचार तब भेजा जब वह मृत्यु की सूचना भी बन चुका था। रोने पीटने के अप-

शकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई सो जा कर देख आवे, यही कहकर और पहना उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसके पैरों में जो पंख लगा दिये थे वे गांव की सीमा में पहुँचते ही झड़ गए। 'हाय लछमिन अब आई' की अस्पष्ट पुनरावृत्तियां और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियां उसे घर तक ठेल ले गईं, पर वहां न पिता का चिह्न शेष था, न विमाता के व्यवहार में शिष्टाचार का लेश था। दुःख से शिथिल और अपमान से जलती हुई वह उस घर में पानी भी बिना पिये उल्टे पैरों ससुराल लौट पड़ी। सास को खरी-खोटी सुना कर उसने विमाता पर आया हुआ क्रोध शान्त किया और पति के ऊपर गहने फेंक फेंक कर उसने पिता के चिर विछोह की मर्मव्यथा व्यक्त की।

जीवन के दूसरे परिच्छेद में भी सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जब उसने गेहुयें रंग और बटिया जैसे मुख वाली पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले तब सास और जिठानियों ने ओठ बिचका कर उपेक्षा प्रकट की। उचित भी था, क्योंकि सास तीन तीन कमाऊ वीरों की विधात्री बनकर मचिया के ऊपर विराजमान पुरखिन के पद पर अभिषिक्त हो चुकी थी और दोनों जिठानियां काकभुशुण्डी जैसे काले लालों की क्रमबद्ध सृष्टि करके इस पद के लिए उम्मीदवार थीं। छोटी बहू के लीक छोड़कर चलने के कारण उसे दण्ड मिलना आवश्यक हो गया।

जिठानियां बैठकर लोक-चर्चा करतीं और उनके कलूटे लड़के धूल उड़ाते; वह मट्ठा फेरती, कूटती, पीसती, रांधती और उसकी नन्हीं लड़कियां गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियां अपने भात पर सफेद राब रख कर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतार

कर खिलातीं। वह काले गड़ की डली के साथ कठौती में मट्ठा पाती और उसकी लड़कियां चने वाजरे की घुघुरी चवातीं।

इस दण्डविधान के भीतर कोई ऐसी धारा नहीं थी जिसके अनुसार खोटे सिक्कों की टकसाल जैसी पत्नी से पति को विरक्त किया जा सकता। सारी चुगली चवाई की परिणति, उसके पत्नी-प्रेम को वढ़ाकर ही होती थी। जिठानियां वात वात पर धमाधम पीटी कूटी जातीं, पर उसके पति ने उसे कभी उँगली भी नहीं छुआई। वह वड़े वाप की वड़ी वात वाली वेटी को पहचानता था। इसके अतिरिक्त परिश्रमी, तेजस्विनी और पति के प्रति रोम रोम से सच्ची पत्नी को वह चाहता भी वहुत रहा होगा, क्योंकि उसके प्रेम के वल पर ही पत्नी ने अलगौझा करके सवको अंगूठा दिखा दिया। काम वही करती थी, इसलिए गाय भैंस, खेत खलिहान, अमराई के पेड़ आदि के सम्वन्ध में उसी का ज्ञान वहुत वढ़ा चढ़ा था। उसने छांट छांट कर, ऊपर से असंतोष की मुद्रा के साथ और भीतर से पुलकित होते हुए जो कुछ लिया वह सवसे अच्छा भी रहा, साथ ही परिश्रमी दम्पति के निरन्तर प्रयास से उसका सोना वन जाना भी स्वाभाविक हो गया।

धूमधाम से वड़ी लड़की का विवाह करने के उपरान्त, पति ने घरौंदे से खेलती हुई दो कन्याओं और कच्ची गृहस्थी का भार उन्तीस वर्ष की पत्नी पर छोड़कर संसार से विदा ली। जव वह मरा तव उसकी अवस्था छत्तीस वर्ष से कुछ ही अधिक रही होगी, पर पत्नी आज उसे वुढ़ऊ कहकर स्मरण करती है। भक्तिन सोचती है कि जव वह वूढ़ी हो गई तव क्या परमात्मा के यहां वे भी न वुढ़ा गए होंगे, अतः उन्हें वढ़ऊ न कहना उनका घोर अपमान है।

हां तो भक्तिन के हरे भरे खेत, मोटी ताज़ी गाय भैंस और फलों से लदे पेड़ देखकर जेठ जिठौतों के मुंह में पानी भर आना ही स्वाभाविक था।

इन सबकी प्राप्ति तो तभी सम्भव थी जब भइयहू दूसरा घर कर लेती, पर जन्म से खोटी भक्तिन इनके चकमे में आई ही नहीं। उसने क्रोध से पांव पटक पटक कर आंगन को कम्पायमान करते हुए कहा 'हम कुकुरी विलारी नं होयँ, हमार मन पुसाई तौ हम दूसर के जाव नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूंजव औ राज करव, समझे रहौ।'

उसने ससुर, अजिया ससुर और जाने कै पीढ़ियों के ससुर गणों की उपार्जित जगह ज़मीन में से सुई की नोक वरावर भी देने की उदारता नहीं दिखाई। इसके अतिरिक्त गरु से कान फुंकवा, कण्ठी वांध और पति के नाम पर घी से चिकने केशों को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी। भविष्य में भी सम्पत्ति सुरक्षित रखने के लिए उसने छोटी लड़कियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल पहुँचाया और पति के चुने हुए वड़े दामाद को घर जमाई वना कर रखा। इस प्रकार उसके जीवन का तीसरा परिच्छेद आरम्भ हुआ।

भक्तिन का दुर्भाग्य भी उससे कम हठी नहीं था इसीसे किशोरी से युवती होते ही वड़ी लड़की भी विधवा हो गई। भइयहू से पार न पा सकने वाले जेठों और काकी को परास्त करने के लिए कटिवद्ध जिठौतों ने आशा की एक किरण देख पाई। विधवा वहिन के गठवन्धन के लिए वड़ा जिठौत अपने तीतर लड़ाने वाले साले को वुला लाया, क्योंकि उसका हो जाने पर सब कुछ उन्हीं के अधिकार में रहता। भक्तिन की लड़की भी मा से कम समझदार नहीं थी, इसीसे उसने वर को नापसन्द कर दिया। वाहर के वहनोई का आना चचेरे भाइयों के लिए सुविधाजनक नहीं था, अतः यह प्रस्ताव जहां का तहां रह गया। तब वे दोनों मां वेटी खूब मन लगा कर अपनी सम्पत्ति की देख भाल करने लगीं और 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की कहावत चरितार्थ करने वाले वर के समर्थक उसे

किसी न किसी प्रकार पति की पदवी पर अभिषिक्त करने का उपाय सोचने लगे।

एक दिन मां की अनुपस्थिति में वर महाशय ने बेटी की कोठरी में घुस कर भीतर से द्वार बन्द कर लिया और उसके समर्थक गांव वालों को बुलाने लगे। अहीर युवती ने जब इस डकैत वर की मरम्मत कर कुण्डी खोली तब पंच बेचारे समस्या में पड़ गए। तीतरबाज़ युवक कहता था वह निमन्त्रण पाकर भीतर गया और युवती उसके मुख पर अपनी पांचों उँगलियों के उभार में इस निमन्त्रण के अक्षर पढ़ने का अनुरोध करती थी। अन्त में दूध का दूध पानी का पानी करने के लिए पंचायत बैठी और सबने सिर हिला हिला कर इस समस्या का मूल कारण कलियुग को स्वीकार किया। अपीलहीन फैसला हुआ कि चाहे उन दोनों में एक सच्चा हो चाहे दोनों झूठे, पर जब वे एक कोठरी से निकले तब उनका पति पत्नी के रूप में रहना ही कलियुग के दोष का परिमार्जन कर सकता है। अपमानित बालिका ने ओठ काट कर लहू निकाल लिया और मां ने आग्नेय नेत्रों से गले पड़े दामाद को देखा। सम्बन्ध कुछ सुखकर नहीं हुआ, क्योंकि दामाद अब निश्चिन्त होकर तीतर लड़ाता था और बेटी विवश क्रोध से जलती रहती थी। उनके यत्न से सँभाले हुए गाय-ढोर, खेती-बारी सब पारिवारिक द्वेष में ऐसे झुलस गए कि लगान अदा करना भी भारी हो गया, सुख से रहने की कौन कहे। अन्त में एक बार लगान न पहुँचने पर जमींदार ने भक्तिन को बुला कर दिन भर कड़ी धूप में खड़ा रखा। यह अपमान तो उसकी कर्मठता में सब से बड़ा कलंक बन गया, अतः दूसरे ही दिन भक्तिन कमाई के विचार से शहर आ पहुँची।

घुटी हुई चाद को मोटी मैली धोती से ढांके और मानो सब प्रकार की आहट सुनने के लिए एक कान कपड़े से बाहर निकाले हुए भक्तिन

जब मेरे यहां सेवक-धर्म में दीक्षित हुई तब उसके जीवन के चौथे और सम्भवतः अन्तिम परिच्छेद का जो अथ हुआ उसकी इति अभी दूर है।

भक्तिन की वेशभूषा में गृहस्थ और वैरागी का सम्मिश्रण देख कर मैंने शंका से प्रश्न किया—क्या तुम खाना बनाना जानती हो? उत्तर में उसने, ऊपर के ओठ को सिकोड़ और नीचे के अधर को कुछ बढ़ा कर आश्वासन की मुद्रा के साथ कहा 'ई कउन बड़ी बात आय! रोटी बनाय जानित है, दाल रांध लेइत है, साग भाजी छँउक सकित हैं, अउर बाकी का रहा।'

दूसरे दिन तड़के ही सिर पर कई लोटे औंधा कर उसने मेरी धुली धोती जल के छींटों से पवित्र कर पहनी और पूर्व के अन्धकार और मेरी दीवार से फूटते हुए सूर्य और पीपल का, दो लोटे जल से अभिनन्दन किया। दो मिनिट नाक दबा कर जप करने के उपरान्त जब वह कोयले की मोटी रेखा से अपने साम्राज्य की सीमा निश्चित कर चौके में प्रतिष्ठित हुई तब मैंने समझ लिया कि इस सेवक का साथ टेढ़ी खीर है। अपने भोजन के सम्बन्ध में नितान्त वीतराग होने पर भी मैं पाक-विद्या के लिए परिवार भर में प्रख्यात हूँ और कोई भी पाक-कुशल दूसरे के काम में नुक्ताचीनी बिना किये रह नहीं सकता। पर जब छूत पाक पर प्राण देने वाले व्यक्तियों का, बात बात पर भूखा मरना स्मरण हो आया और भक्तिन की शंकाकुल दृष्टि में छिपे हुए निषेध का अनुभव किया तब कोयले की रेखा मेरे लिए लक्ष्मण के धनुष से खींची हुई रेखा के समान दुर्लंघ्य हो उठी। निरुपाय अपने कमरे में बिछौने पर पड़ कर और नाक के ऊपर खुली हुई पुस्तक स्थापित कर मैं चौके में पीढ़े पर आसीन अनधिकारी को भूलने का प्रयास करने लगी।

भोजन के समय जब मैंने अपनी निश्चित सीमा के भीतर निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया तब भक्तिन ने प्रसन्नता से लबालब दृष्टि और आत्मतुष्टि से आप्लावित मुस्कराहट के साथ मेरी फूल की थाली में एक अंगुल मोटी

और गहरी काली चित्तीदार चार रोटियां रखकर उसे टेढ़ी कर गाढ़ी दाल परोस दी। पर जब उसके उत्साह पर तुषारपात करते हुए मैंने रुआंसे भाव से कहा 'यह क्या बनाया है' तब वह हतबुद्धि हो रही।

रोटियां अच्छी सेकने के प्रयास में कुछ अधिक खरी हो गईं हैं पर अच्छी हैं, तरकारियां थीं पर जब दाल बनी है तब उनका क्या काम—शाम को दाल न बना कर तरकारी बना दी जायगी। दूध घी मुझे अच्छा नहीं लगता, नहीं तो सब ठीक हो जाता। अब न हो तो अमचूर और लाल मिर्च की चटनी पीस ली जावे। उससे भी काम न चले तो वह गांव से लाई हुई गठरी में से थोड़ा सा गुड़ दे देगी। और शहर के लोग क्या कलाबत्तू खाते हैं? फिर वह कुछ अनाड़िन या फूहड़ नहीं। उसके ससुर, पितिया ससुर, अजिया सास आदि ने उसकी पाककुशलता के लिए न जाने कितने मौखिक प्रमाणपत्र दे डाले हैं।

भक्तिन के इस सारगर्भित लेक्चर का प्रभाव यह हुआ कि मैं, मीठे से विरक्ति के कारण बिना गुड़ के और घी से अरुचि के कारण रूखी दाल से एक मोटी रोटी खाकर बहुत ठाठ से यूनिवर्सिटी पहुँची और न्याय-सूत्र पढ़ते पढ़ते शहर और देहात के जीवन के इस अन्तर पर विचार करती रही।

अलग भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी थी अपने गिरते हुए स्वास्थ्य और परिवारवालों की चिन्ता-निवारण के लिए, पर प्रबन्ध ऐसा हो गया कि उसका प्रश्न ही खो गया। इस देहाती वृद्धा ने जीवन की सरलता के प्रति मुझे इतना जाग्रत कर दिया था कि मैं अपनी असुविधायें छिपाने लगी, सुविधाओं की चिन्ता करना तो दूर की बात।

इसके अतिरिक्त भक्तिन का स्वभाव ही ऐसा बन चुका है कि वह दूसरों को अपने मन के अनुसार बना लेना चाहती है, पर अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना तक उसके लिए सम्भव नहीं। इसी से आज

में अधिक देहाती हूँ, पर उसे शहर की हवा नहीं लग पाई। मकई का, रात को बना दलिया सवेरे मट्ठे से सोंधा लगता है, बाजरे के, तिल लगा कर बनाये हुए पुये गर्म कम अच्छे लगते हैं, ज्वार के भुने हुए भुट्टे के हरे दानों की खिचड़ी स्वादिष्ट होती है, सफेद महुवे की लपसी संसार भर के हलवे को लजा सकती है आदि वह मुझे क्रियात्मक रूप से सिखाती रहती है। पर यहां का रसगुल्ला तक भक्तिन के पोपले मुंह में प्रवेश करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सका। मेरे रात दिन नाराज़ होने पर भी उसने साफ़ धोती पहनना नहीं सीखा, पर मेरे स्वयं धोकर फैलाये हुए कपड़ों को भी वह तह करने के बहाने सिलवटों से भर देती है। मुझे उसने अपनी भाषा की अनेक दन्तकथायें कंठस्थ करा दी हैं, पर पुकारने पर वह 'आँय' के स्थान में 'जी' कहने का शिष्टाचार भी नहीं सीख सकी।

भक्तिन अच्छी है यह कहना कठिन होगा, क्योंकि उसमें दुर्गुणों का अभाव नहीं। वह सत्यवादी हरिश्चन्द्र नहीं बन सकती पर 'नरो वा कुञ्जरो वा' कहने में भी विश्वास नहीं करती। मेरे इधर उधर पड़े पैसे रुपये, भण्डार घर की किसी मटकी में कैसे अन्तर्हित हो जाते हैं, यह रहस्य भी भक्तिन जानती है। पर इस सम्बन्ध में किसी के संकेत करते ही वह उसे शास्त्रार्थ के लिए ऐसी चुनौती दे डालती है जिसको स्वीकार कर लेना किसी तर्क-शिरो-मणि के लिए भी सम्भव नहीं। यह उसका अपना घर ठहरा—पैसा रुपया जो इधर उधर पड़ा देखा सँभाल कर रख लिया। यह क्या चोरी है? उसके जीवन का परम कर्तव्य मुझे प्रसन्न रखना है—जिस बात से मुझे क्रोध आ सकता है उसे कुछ बदल कर इधर उधर करके बताना क्या झूठ है? इतनी चोरी और इतना झूठ तो धर्मराज़ महाराज में भी होगा, नहीं तो वे भगवान जी को कैसे प्रसन्न रख सकते और संसार को कैसे चला सकते!

शास्त्र का प्रश्न भी भक्तिन अपनी सुविधा के अनुसार सुलझा लेती है।

मुझे स्त्रियों का सिर घुटाना अच्छा नहीं लगता, अतः मैंने भक्तिन को रोका। उसने अकुण्ठित भाव से उत्तर दिया कि शास्त्र में लिखा है। कुतूहल वश मैं पूछ ही बैठी 'क्या लिखा है'? तुरन्त उत्तर मिला 'तीरथ गए मुंड़ाये सिद्ध'। कौन से शास्त्र का यह रहस्यमय सूत्र है, यह जान लेना मेरे लिए सम्भव ही नहीं था। अतः मैं हार कर मौन हो रही और भक्तिन का चूड़ाकर्म हर वृहस्पतिवार को, एक दरिद्र नापित के गंगाजल से धुले अस्तुरे द्वारा यथाविधि निष्पन्न होता रहा।

पर वह मूर्ख है या विद्याबुद्धि का महत्व नहीं जानती, यह कहना असत्य कहना है। अपने विद्या के अभाव को वह मेरी पढ़ाई लिखाई पर अभिमान करके भर लेती है। एक बार जब मैंने सब काम करने वालों से अंगूठे के निशान के स्थान में हस्ताक्षर लेने का नियम बनाया तब भक्तिन बड़े कष्ट में पड़ गई, क्योंकि एक तो उससे पढ़ने की मुसीबत नहीं उठाई जा सकती थी, दूसरे सब गाड़ीवान दाइयों के साथ बैठकर पढ़ना उसकी वयोवृद्धता का अपमान था। अतः उसने कहना आरम्भ किया 'हमार मलकिन तौ रातदिन कितबियन मां गढ़ी रहती हैं! अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर गिरिस्ती कउन देखी सुनी'।

पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले दोनों पर इस तर्क का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भक्तिन इन्सपेक्टर के समान क्लास में घूम घूमकर किसी के आ इ की बनावट, किसी के हाथ की मंथरता, किसी की बुद्धि की मन्दता पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार पा गई। उसे तो अंगूठा निशानी देकर वेतन लेना नहीं होता, इसीसे बिना पढ़े ही वह पढ़नेवालों की गुरु बन बैठी। वह अपने तर्क ही नहीं तर्कहीनता के लिए भी प्रमाण खोज लेने में पटु है। अपने आपको महत्व देने के लिए ही वह अपनी मालकिन को असाधारणता देना चाहती है, पर इसके लिए भी प्रमाण की खोज-ढूंढ़ आवश्यक हो उठती है।

जब एक बार मैं उत्तर-पुस्तकों और चित्रों को लेकर व्यस्त थी तब भक्तिन सबसे कहती घूमी 'ऊ बिचरिअउ तौ रातदिन काम मां झुकी रहती हैं, अउर तुम पचे घुमती फिरती हौ ! चलौ तनिक तिनुक हाथ बटाय लेउ ।' सब जानते थे कि ऐसे कामों में हाथ नहीं बटाया जा सकता, अतः उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर भक्तिन से पिण्ड छुड़ाया। बस इसी प्रमाण के आधार पर उसकी सब अतिशयोक्तियां अमरबेलि सी फैलने लगीं—उसकी मालकिन जैसा काम कोई जानता ही नहीं, इसीसे तो बुलाने पर भी कोई हाथ बटाने की हिम्मत नहीं करता।

पर वह स्वयं कोई सहायता नहीं दे सकती इसे मानना अपनी हीनता स्वीकार करना है—इसी से वह द्वार पर बैठकर बार बार कुछ काम बताने का आग्रह करती है। कभी उत्तर पुस्तकों को बांधकर, कभी अधूरे चित्र को कोने में रखकर, कभी रंग की प्याली धोकर और कभी चटाई को आंचल से झाड़कर वह जैसी सहायता पहुँचाती है उससे भक्तिन का अन्य व्यक्तियों से अधिक बुद्धिमान होना प्रमाणित हो जाता है। वह जानती है कि जब दूसरे मेरा हाथ बटाने की कल्पना तक नहीं कर सकते तब वह सहायता की इच्छा को क्रियात्मक रूप देती है, इसीसे मेरी किसी पुस्तक के प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा वैसे ही उद्भासित हो उठती है जैसे स्विच दबाने से बल्ब में छिपा आलोक। वह सूने में उसे बार बार छूकर, आंखों के निकट ले जाकर और सब ओर घुमा फिरा कर मानो अपनी सहायता का अंश खोजती है और उसकी दृष्टि में व्यक्त आत्मतोष कहता है कि उसे निराश नहीं होना पड़ता। यह स्वाभाविक भी है। किसी चित्र को पूरा करने में व्यस्त, मैं जब बार बार कहने पर भी भोजन के लिए नहीं उठती तब वह कभी दही का शर्बत कभी तुलसी की चाय वहीं देकर भूख का कष्ट नहीं सहने देती।

दिन भर के कार्य-भार से छुट्टी पाकर जब मैं कोई लेख समाप्त करने या भाव को छन्दबद्ध करने बैठती हूँ तब छात्रावास की रोशनी बुझ चुकती है, मेरी हिरनी सोना तख्त के पैताने फर्श पर बैठकर पागुर करना बंद कर देती है, कुत्ता बसन्त छोटी मचिया पर पञ्जों में मुख रखकर आंखें मूंद लेता है और बिल्ली गोधूली मेरे तकिये पर सिकुड़कर सो रहती है।

पर मुझे रात की निस्तब्धता में अकेला न छोड़ने के विचार से कोने में दरी के आसन पर बैठकर बिजली की चकाचौंध से आंखें मिचमिचाती हुई भक्तिन प्रशान्त भाव से जागरण करती है। वह ऊँघती भी नहीं, क्योंकि मेरे सिर उठाते ही उसकी धुंधली दृष्टि मेरी आंखों का अनुसरण करने लगती है। यदि मैं सिरहाने रखे रैक की ओर देखती हूँ तो वह उठकर आवश्यक पुस्तक का रंग पूछती है, यदि मैं क़लम रख देती हूँ तो वह स्याही उठा लाती है और यदि मैं काग़ज़ एक ओर सरका देती हूँ तो वह दूसरी फाइल टटोलती है।

बहुत रात गए सोने पर भी मैं जल्दी ही उठती हूँ और भक्तिन को तो मुझसे भी पहले जागना पड़ता है—सोना उछल कूद के लिए बाहर जाने को आकुल रहती है, बसन्त नित्य कर्म के लिए दरवाज़ा खुलवाना चाहता है, और गोधूली चिड़ियों की चहचहाहट में शिकार का आमन्त्रण सुन लेती है।

मेरे भ्रमण की भी एकान्त साथिन भक्तिन ही रही है। बदरी-केदार आदि के ऊँचे नीचे और तंग पहाड़ी रास्ते में जैसे वह हठ करके मेरे आगे चलती रही है, वैसे ही गांव की धूलभरी पगडंडी पर मेरे पीछे रहना नहीं भूलती। किसी भी परिस्थिति में, किसी भी समय, कहीं भी जाने के लिए प्रस्तुत होते ही मैं भक्तिन को छाया के समान साथ पाती हूँ।

युद्ध को देश की सीमा में बढ़ते देख जब लोग आतंकित हो उठे तब

भक्तिन के बेटी दामाद उसके नाती को लेकर बुलाने आ पहुँचे, पर बहुत समझाने बुझाने पर भी वह उनके साथ नहीं जा सकी। सबको वह देख आती है, रुपया भेज देती है, पर उनके साथ रहने के लिए मेरा साथ छोड़ना आवश्यक है जो सम्भवतः भक्तिन को जीवन के अन्त तक स्वीकार न होगा।

जब गतवर्ष युद्ध के भूत ने वीरता के स्थान में पलायन-वृत्ति जगा दी थी तब भक्तिन पहली ही बार सेवक की विनीत मुद्रा के साथ मुझसे गांव चलने का अनुरोध करने आई। वह लकड़ी रखने के मचान पर अपनी नई धोती बिछाकर मेरे कपड़े रख देगी, दीवाल में कीलें गाढ़ कर और उन पर तख्ते रखकर मेरी किताबें सजा देगी, धान के पुआल का गोंदरा बनवाकर और उस पर अपना कम्बल बिछा कर वह मेरे सोने का प्रबन्ध करेगी, मेरे रंग, स्याही, आदि को नई हँडियों में सँजोकर रख देगी और कागज़ पत्रों को छीकें में यथाविधि एकत्र कर देगी।

'मेरे पास वहां जाकर रहने के लिए रुपया नहीं है' यह मैंने भक्तिन के प्रस्ताव को अवकाश न देने के लिए कहा था, पर उसके परिणाम ने मुझे विस्मित कर दिया। भक्तिन ने परम रहस्य का उद्घाटन करने की मुद्रा बनाकर और अपना पोपला मुंह मेरे कान के पास लाकर हौले हौले बताया कि उसके पास पांच बीसी और पांच रुपया गढ़ा रखा है। उसी से वह सब प्रबन्ध कर लेगी। फिर लड़ाई तो कुछ अमरौती खाकर आई नहीं है। जब सब ठीक हो जायगा तब यहीं लौट आयेंगे। भक्तिन की कंजूसी के प्रमाण पुञ्जीभूत होते होते पर्वताकार बन चुके थे, परन्तु इस उदारता के डाइनामाइट ने क्षण भर में उन्हें उड़ा दिया। इतने थोड़े रुपये का कोई महत्व नहीं, परन्तु रुपये के प्रति भक्तिन का अनुराग इतना प्रख्यात हो चुका है कि मेरे लिए उसका परित्याग मेरे महत्व की सीमा तक पहुँचा देता है।

भक्तिन और मेरे बीच में सेवक स्वामी का सम्बन्ध है यह कहना

कठिन है, क्योंकि ऐसा कोई स्वामी नहीं हो सकता जो इच्छा होने पर भी सेवक को अपनी सेवा से हटा न सके और ऐसा कोई सेवक भी नहीं सुना गया जो स्वामी से चले जाने का आदेश पाकर अवज्ञा से हँस दे। भक्तिन को नौकर कहना उतना ही असंगत है जितना अपने घर में वारी वारी से आनेजानेवाले अँधेरे-उजाले और आंगन में फूलने वाले गुलाब और आम को सेवक मानना। वे जिस प्रकार एक अस्तित्व रखते हैं जिसे सार्थकता देने के लिए ही हमें सुख-दुःख देते हैं उसी प्रकार भक्तिन का स्वतंत्र व्यक्तित्व अपने विकास के परिचय के लिए ही मेरे जीवन को घेरे हुए है।

परिवार और परिस्थितियों के कारण उसके स्वभाव में जो विषमतायें उत्पन्न हो गई हैं उनके भीतर से एक स्नेह और सहानुभूति की आभा फूटती रहती है, इसी से उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति उसमें जीवन की सहज मार्मिकता ही पाते हैं। छात्रावास की बालिकाओं में से कोई अपनी चाय बनवाने के लिए उसके चौके के कोने में घुसी रहती है, कोई दूध औटवाने के लिए देहली पर बैठी रहती है, कोई बाहर खड़ी मेरे लिए बने नाश्ते को चख कर उसके स्वाद की विवेचना करती रहती है। मेरे बाहर निकलते ही सब चिड़ियों के समान उड़ जाती हैं और भीतर आते ही यथा-स्थान विराजमान हो जाती हैं। इन्हें आने में रुकावट न हो सम्भवतः इसीसे भक्तिन अपना दोनों जून का भोजन सवेरे ही बनाकर ऊपर के आले में रख देती है और खाते समय चौके का एक कोना धोकर पाकछूत के सनातन नियम से समझौता कर लेती है।

मेरे परिचितों और साहित्यिक बन्धुओं से भी भक्तिन विशेष परिचित है, पर उनके प्रति भक्तिन के सम्मान की मात्रा, मेरे प्रति उनके सम्मान की मात्रा पर निर्भर है और सद्भाव उनके प्रति मेरे सद्भाव से निश्चित होता है। इस सम्बन्ध में भक्तिन की सहजबुद्धि विस्मित कर देनेवाली है।

वह किसी को आकार-प्रकार और वेश-भूषा से स्मरण करती है और किसी को नाम के अपभ्रंश द्वारा। कवि और कविता के सम्बन्ध में उसका ज्ञान बड़ा है पर आदर भाव नहीं। किसी के लम्बे बाल और अस्तव्यस्त वेश-भूषा देखकर वह कह उठती है 'का ओहू कवित्त लिख जानत हैं' और तुरन्त ही उसकी अवज्ञा प्रकट हो जाती है 'तब ऊ कुच्छौ करिहैं धरिहैं ना—बस गली गली गाउत बजाउत फिरिहैं'।

पर सबका दुःख उसे प्रभावित कर सकता है। विद्यार्थी वर्ग में से कोई जब कारागार का अतिथि हो जाता है तब उस समाचार से व्यथित भक्तिन 'बीता बीता भरे लड़कन का जेहल—कलजुग रहा तौन रहा अब परलय होइ जाई—उनकर माई का बड़े लाट तक लड़ै का चही' कहकर दिन भर सबको परेशान करती रहती है। बापू से लेकर साधारण व्यक्ति तक सबके प्रति भक्तिन की सहानुभूति एकरस मिलती है।

भक्तिन के संस्कार ऐसे हैं कि वह कारागार से वैसे ही डरती है जैसे यमलोक से। ऊँची दीवार देखते ही वह आंख मूंदकर बेहोश हो जाना चाहती है। उसकी यह कमजोरी इतनी प्रसिद्धि पा चुकी है कि लोग मेरे जाने की सम्भावना बता बता कर उसे चिढ़ाते रहते हैं। वह डरती नहीं यह कहना असत्य होगा, पर डर से भी अधिक महत्व मेरे साथ का ठहरता है। चुपचाप मुझसे पूछने लगती है कि वह अपनी कै धोती साबुन से साफ कर ले जिससे मुझे वहां उसके लिए लज्जित न होना पड़े। क्या क्या सामान बांध ले जिससे मुझे वहां किसी प्रकार की असुविधा न हो सके। ऐसी यात्रा में किसी को किसी के साथ जाने का अधिकार नहीं यह आश्वासन भक्तिन के लिए कोई मूल्य नहीं रखता। वह मेरे न जाने की कल्पना से इतनी प्रसन्न नहीं होती जितनी अपने साथ न जा सकने की सम्भावना से अपमानित। भला ऐसा अन्धेर हो सकता है! जहां मालिक वहां नौकर—मालिक को ले

जाकर बन्द कर देने में इतना अन्याय नहीं पर नौकर को अकेले मुक्त छोड़ देने में पहाड़ के बराबर अन्याय है। ऐसा अन्याय होने पर भक्तिन को बड़े लाट तक लड़ना पड़ेगा। किसी की माई यदि बड़े लाट तक नहीं लड़ी तो नहीं लड़ी पर भक्तिन का तो विना लड़े काम ही नहीं चल सकता।

ऐसे विषम प्रतिद्वन्द्वियों की स्थिति कल्पना में भी दुर्लभ है।

मैं प्रायः सोचती हूँ कि जब ऐसा बुलावा आ पहुंचेगा जिसमें न धोती साफ करने का अवकाश रहेगा न सामान बांधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा न मुझे रोकने का, तब चिर विदा के अन्तिम क्षणों में यह देहातिन वृद्धा क्या करेगी और मैं क्या कहूँगी ?

भक्तिन की कहानी अधूरी है—पर उसे खोकर मैं इसे पूरी नहीं करना चाहती।

मुझे चीनियों में पहचान कर स्मरण रखने योग्य विभिन्नता कम

मिलती है। कुछ समतल मुख एक ही सांचे में ढले से जान पड़ते हैं और उनकी एकरसता दूर करने वाली, वस्त्र पर पड़ी हुई सिकुड़न जैसी नाक की गठन में भी विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। कुछ तिरछी, अधखुली और विरल भूरी वरुनियों वाली आंखों की तरल रेखाकृति देखकर भ्रांति होती है कि वे सब एक नाप के अनुसार किसी तेज़ धार से चीर कर बनाई गई हैं। स्वाभाविक पीतवर्ण धूप के चरण-चिन्हों पर पड़े हुए धूल के आवरण के कारण कुछ ललछौंहे सूखे पत्ते की समानता पा लेता है। आकार-प्रकार, वेश-भूषा सब मिलकर इन दूर-देशियों को यन्त्रचालित पुतलों की भूमिका दे देते हैं, इसी से अनेक बार देखने पर भी एक फेरी वाले चीनी को दूसरे से भिन्न करके पहचानना कठिन है।

पर आज मुखों की एकरूप समष्टि में मुझे एक मुख आर्द्र नीलिमा-मयी आंखों के साथ स्मरण आता है जिसकी मौन भंगिमा कहती है—हम कार्बन की कापियां नहीं हैं। हमारी भी एक कथा है। यदि जीवन की वर्ण-माला के सम्बन्ध में तुम्हारी आंखें निरक्षर नहीं तो तुम पढ़कर देखो न।

कई वर्ष पहले की बात है। मैं तांगे से उतर कर भीतर आ रही थी और भूरे कपड़े का गट्ठर बायें कन्धे के सहारे पीठ पर लटकाये हुए और दाहने हाथ में लोहे का गज़ घुमाता हुआ चीनी फेरीवाला फाटक से बाहर निकल रहा था। सम्भवतः मेरे घर को बन्द पाकर वह लौटा जा रहा था। 'कुछ लेगा मेम साब'—दुर्भाग्य का मारा चीनी। उसे क्या पता कि यह सम्बोधन मेरे मन में रोष की सब से तुंग तरंग उठा देता है। मइया, माता, जीजी, दिदिया, बिटिया आदि न जाने कितने सम्बोधनों से मेरा परिचय है और सब मुझे प्रिय हैं, पर यह विजातीय सम्बोधन मानो सारा परिचय छीन कर मुझे गाउन में खड़ा कर देता है। इस सम्बोधन के उपरान्त मेरे पास से निराश होकर न लौटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

मैंने अवज्ञा से उत्तर दिया 'मैं विदेशी—फ़ॉरेन—नहीं खरीदती'। 'हम फ़ॉरेन है? हम तो चाइना से आता है' कहने वाले के कण्ठ में सरल विस्मय के साथ उपेक्षा की चोट से उत्पन्न चोट भी थी। इस बार रुक कर, उत्तर देने वाले को ठीक से देखने की इच्छा हुई। धूल से मटमैले सफ़ेद किरमिच के जूते में छोटे पैर छिपाये, पतलून और पैजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पैजामा और कुरते तथा कोट की एकता के आधार पर सिला कोट पहने, उधड़े हुए किनारों से पुरानेपन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके, दाढ़ी-मूंछ विहीन दुबली नाटी जो मूर्ति खड़ी थी वह तो शाश्वत चीनी है। उसे सबसे अलग करके देखने का प्रश्न जीवन में पहली बार उठा।

मेरी उपेक्षा से उस विदेशीय को चोट पहुँची यह सोच कर मैंने अपनी 'नहीं' को और अधिक कोमल बनाने का प्रयास किया 'मुझे कुछ नहीं चाहिए भाई !' चीनी भी विचित्र निकला 'हमको भाय बोला है तब जरूल लेगा, जरूल लेगा—हां ?' होम करते हाथ जला वाली कहावत हो गई—विवश कहना पड़ा 'देखूं तुम्हारे पास है क्या ?' चीनी बरामदे में कपड़े का गट्ठर उतारता हुआ कह चला 'भोत अच्चा सिल्क लाता है सिस्तर ! चाइना सिल्क, क्रेप'.... बहुत कहने सुनने के उपरान्त दो मेज़पोश खरीदना आवश्यक हो गया। सोचा—चलो छुट्टी हुई। इतनी कम बिक्री होने के कारण चीनी अब कभी इस ओर आने की भूल न करेगा।

पर कोई पन्द्रह दिन बाद वह बरामदे में अपनी गठरी पर बैठ कर गज़ को फ़र्श पर बजा बजा कर गुनगुनाता हुआ मिला। मैंने उसे कुछ बोलने का अवसर न देकर व्यस्त भाव से कहा—'अब तो मैं कुछ न लूंगी। समझे ?' चीनी खड़ा होकर जेब से कुछ निकालता हुआ प्रफुल्ल मुद्रा से बोला 'सिस्तर का वास्ते हैंकी लाता है—भोत बेस्त, सब सेल हो गया। हम इसको पाकेत में छिपा के लाता है।'

देखा कुछ रूमाल थे। ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का हर घुमाव और कोनों में उसी रंग से बने नन्हे फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उँगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी जीवन के अभाव की करुण कहानी भी कह रही थी। मेरे मुख के निषेधात्मक भाव को लक्ष्य कर अपनी नीली रेखाकृति आंखों को जल्दी जल्दी बन्द करते और खोलते हुए वह एक सांस में 'सिस्तर का वास्ते लाता है, सिस्तर का वास्ते लाता है', दोहराने तिहराने लगा।

मन में सोचा अच्छा भाई मिला है। बचपन में मुझे लोग चीनी कह कर चिढ़ाया करते थे। सन्देह होने लगा उस चिढ़ाने में कोई तत्व भी रहा

होगा। अन्यथा आज यह सचमुच का चीनी, सारे इलाहाबाद को छोड़कर मुझसे बहिन का सम्बन्ध क्यों जोड़ने आता! पर उस दिन से चीनी को मेरे यहां जब-तब आने का विशेष अधिकार प्राप्त हो गया। चीन का साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी कला के सम्बन्ध में विशेष अभिरुचि रखता है इसका पता भी उसी चीनी की परिष्कृत रुचि में मिला।

नीली दीवार पर किस रंग के चित्र सुन्दर जान पड़ते हैं, हरे कुशन पर किस प्रकार के पक्षी अच्छे लगते हैं, सफेद पर्दे के कोनों में किस बनावट के फूल-पत्ते खिलेंगे आदि के विषय में चीनी उतनी ही जानकारी रखता था जितनी किसी अच्छे कलाकार में मिलेगी। रंग से उसका अति परिचय यह विश्वास उत्पन्न कर देता था कि वह आंखों पर पट्टी बांध देने पर भी केवल स्पर्श से रंग पहचान लेगा।

चीन के वस्त्र, चीन के चित्र आदि की रंगमयता देखकर भ्रम होने लगता है कि वहां की मिट्टी का हर कण भी इन्हीं रंगों से रंगा हुआ न हो। चीन देखने को इच्छा प्रकट करते ही 'सिस्तर का वास्ते हम चलेगा' कहते कहते चीनी की आंखों की नीली रेखा प्रसन्नता से उजली हो उठती थी।

अपनी कथा सुनाने के लिए भी वह विशेष उत्सुक रहा करता था पर कहने सुननेवाले के बीच की खाई बहुत गहरी थी। उसे चीनी और बर्मी भाषायें आती थीं जिनके सम्बन्ध में अपनी सारी विद्या-बुद्धि के साथ मैं 'आंखों के अन्धे नाम नैनसुख' की कहावत चरितार्थ करती थी। अंग्रेजी की क्रियाहीन संज्ञायें और हिन्दुस्तानी की संज्ञाहीन क्रियाओं के सम्मिश्रण से जो विचित्र भाषा बनती थी उसमें कथा का सारा मर्म बंध नहीं पाता था। पर जो कथायें हृदय का बांध तोड़कर, दूसरों को अपना परिचय देने के लिए बह निकलती हैं वे प्रायः करुण होती है और

करुणा की भाषा शब्दहीन रहकर भी बोलने में समर्थ है। चीनी फेरीवाले की कथा भी इसका अपवाद नहीं।

जब उसके माता पिता ने मांडले आकर चाय की छोटी दुकान खोली तब उसका जन्म नहीं हुआ था। उसे जन्म देकर और सात वर्ष की बहिन के संरक्षण में छोड़कर जो परलोक सिधारी उस अनदेखी मां के प्रति चीनी की श्रद्धा अटूट थी।

सम्भवतः मा ही ऐसा प्राणी है जिसे कभी न देख पाने पर भी मनुष्य ऐसे स्मरण करता है जैसे उसके सम्बन्ध में कुछ जानना बाकी नहीं। यह स्वाभाविक भी है।

मनुष्य को संसार से बांधने वाला विधाता मा ही है, इसी से उसे न मान कर संसार को न मानना सहज है पर संसार को मान कर उसे न मानना असम्भव ही रहता है।

पिता ने जब दूसरी बर्मी चीनी स्त्री को गृहिणी-पद पर अभिषिक्त किया तब उन मातृहीनों की यातना की कठोर कहानी आरम्भ हुई। दुर्भाग्य इतने से ही संतुष्ट नहीं हो सका क्योंकि उसके पांचवें वर्ष में पैर रखते न रखते एक दुर्घटना में पिता ने भी प्राण खोये।

अन्य अबोध बालकों के समान उसने सहज ही अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लिया, पर बहिन और विमाता में किसी प्रस्ताव को लेकर जो वैमनस्य बढ़ रहा था वह इस समझौते को उत्तरोत्तर विषाक्त बनाने लगा। किशोरी बालिका की अवज्ञा का बदला उसी को नहीं, उसके अबोध भाई को कष्ट दे कर भी चुकाया जाता था। अनेक बार उसने ठिठुरती हुई बहिन की कम्पित उँगलियों में अपना हाथ रख, उसके मलिन वस्त्रों में अपना आंसुओं से धुला मुख छिपा और

उसकी छोटी सी गोद में सिमट कर भूख भुलाई थी। कितनी ही बार सबेरे, आंख मूंद कर बन्द द्वार के बाहर दीवार से टिकी हुई बहिन की ओर से गीले बालों में, अपनी ठिठुरी हुई उँगलियों को गर्म करने का व्यर्थ प्रयास करते हुए, उसने पिता के पास जाने का रास्ता पूछा था। उत्तर में बहिन के फीके गाल पर चुपचाप ढुलक आने वाले आंसू की बड़ी बूंद देख कर वह घबराकर बोल उठा था—उसे कहवा नहीं चाहिए वह तो पिता को देखना भर चाहता है।

कई बार पड़ोसियों के यहां रकाबियां धोकर और काम के बदले भात मांग कर बहिन ने भाई को खिलाया था। व्यथा की कौन सी अन्तिम मात्रा ने बहिन के नन्हे हृदय का बांध तोड़ डाला इसे अबोध बालक क्या जाने। पर एक रात उसने बिछौने पर लेट कर बहिन की प्रतीक्षा करते करते आधी आंख खोली और विमाता को कुशल बाजीगर की तरह, मैली कुचैली बहिन का कायापलट करते देखा। उसके सूखे ओठों पर विमाता की मोटी उँगली ने दौड़ दौड़ कर लाली फेरी, उसके फीके गालों पर चौड़ी हथेली ने घूम घूम कर सफेद गुलाबी रंग भरा, उसके रूखे बालों को कठोर हाथों ने घेर घेर कर सँवारा और तब नये रंगीन वस्त्रों में सजी हुई उस मूर्त्ति को एक प्रकार से ठेलती हुई विमाता रात के अन्धकार में बाहर अन्तर्हित हो गई!

बालक का विस्मय भय में बदल गया और भय ने रोने में शरण पाई—कब वह रोते रोते सो गया इसका पता नहीं, पर जब वह किसी के स्पर्श से जागा तो बहिन उस गठरी बने हुए भाई के मस्तक पर मुख रख कर सिसकियां रोक रही थी। उस दिन उसे अच्छा भोजन मिला, दूसरे दिन कपड़े, तीसरे दिन खिलौने—पर बहिन के दिनों दिन विवर्ण होने वाले ओठों पर अधिक गहरे रंग की आवश्यकता पड़ने लगी,

उसके उत्तरोत्तर फीके पड़ने वाले गालों पर देर तक पाउडर मला जाने लगा।

बहिन के छीजते शरीर और घटती शक्ति का अनुभव बालक करता था, पर वह किससे कहे, क्या करे, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी। बार बार सोचता था पिता का पता मिल जाता तो सब ठीक हो जाता। उसके स्मृति पट पर मा की कोई रेखा नहीं, परन्तु पिता का जो अस्पष्ट चित्र अंकित था उससे उनके स्नेहशील होने में सन्देह नहीं रह जाता। प्रतिदिन निश्चय करता कि दूकान में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति से पिता का पता पूछेगा और एक दिन चुपचाप उनके पास पहुँच और उसी तरह चुपचाप उन्हें घर लाकर खड़ा कर देगा—तब यह विमाता कितनी डर जायगी और बहिन कितनी प्रसन्न होगी!

चाय की दूकान का मालिक अब दूसरा था, परन्तु पुराने मालिक के पुत्र के साथ उसके व्यवहार में सहृदयता कम नहीं रही, इसीसे बालक एक कोने में सिकुड़ कर खड़ा हो गया और आनेवालों से हकला हकला कर पिता का पता पूछने लगा। कुछ ने उसे आश्चर्य से देखा, कुछ मुस्करा दिये, पर दो एक ने दूकानदार से कुछ ऐसी बात कही जिससे वह बालक को हाथ पकड़कर बाहर ही नहीं छोड़ आया, इस भूल की पुनरावृति होने पर विमाता से दण्ड दिलाने की धमकी भी दे गया। इस प्रकार उसकी खोज का अन्त हुआ।

बहिन का सन्ध्या होते ही कायापलट, फिर उसका आधी रात बीत जाने पर भारी पैरों से लौटना, विशाल शरीरवाली विमाता का जंगली बिल्ली की तरह हल्के पैरों से बिछौने से उछल कर उतर आना, बहिन के शिथिल हाथों से बटुये का छिन जाना और उसका भाई के मस्तक पर मुख रखकर स्तब्ध भाव से पड़ रहना आदि क्रम ज्यों के त्यों चलते रहे।

पर एक दिन बहिन लौटी ही नहीं। सवेरे विमाता को कुछ चिन्तित-भाव से उसे खोजते देख बालक सहसा किसी अज्ञात भय से सिहर उठा। बहिन—उसकी एकमात्र आधार बहिन। पिता का पता न पा सका और अब बहिन भी खो गई। वह जैसा था वैसा ही बहिन को खोजने के लिए गली गली में मारा मारा फिरने लगा। रात में वह जिस रूप में परिवर्तित हो जाती थी उसमें दिन को उसे पहचान सकना कठिन था, इसीसे वह जिसे अच्छे कपड़े पहने हुए जाता देखता उसी के पास पहुँचने के लिए सड़क के एक ओर से दूसरी ओर दौड़ पड़ता। कभी किसी से टकरा कर गिरते गिरते बचता, कभी किसी से गाली खाता, कभी कोई दया से प्रश्न कर बैठता—क्या इतना ज़रा सा लड़का भी पागल हो गया है ?

इसी प्रकार भटकता हुआ वह गिरहकटों के गिरोह के हाथ लगा और तब उसकी दूसरी शिक्षा आरम्भ हुई। जैसे लोग कुत्ते को दो पैरों से बैठना, गर्दन ऊँची कर खड़ा होना, मुँह पर पंजे रख कर सलाम करना आदि करतब सिखाते हैं उसी प्रकार वे सब उसे तम्बाखू के धुयें और दुर्गन्धित सांस से भरे और फटे चियड़े, टूटे बरतन और मैले शरीरों से बसे हुए कमरे में बन्द कर कुछ विशेष संकेतों और हँसने रोने के अभिनय में पारंगत बनाने लगे।

कुत्ते के पिल्ले के समान ही वह घुटनों के बल खड़ा रहता और हँसने रोने की विविध मुद्राओं का अभ्यास करता। हँसी का स्रोत इस प्रकार सूख चुका था कि अभिनय में भी वह बार बार भूल करता और मार खाता। पर क्रन्दन उसके भीतर इतना अधिक उमड़ा रहता था कि जरा मुँह बनाते ही दोनो आँखों से दो गोल गोल बूंदें नाक के दोनों ओर निकल आतीं और पतली समानान्तर रेखा बनाती और मुंह के दोनों सिरों को छूती हुई ठुड्डी के नीचे तक चली जातीं। इसे अपनी दुर्लभ शिक्षा का

फल समझकर, रोओं से काले उदर पर पीलासा रंग बांधने वाला उसका शिक्षक प्रसन्नता से उछल कर उसे एक लात जमा कर पुरस्कार देता।

वह दल वर्मी, चीनी, श्यामी आदि का सम्मिश्रण था इसीसे 'चोरों की बरात में अपनी अपनी होशयारी' के सिद्धान्त का पालन बड़ी सतर्कता से हुआ करता। जो उस पर कृपा रखते थे उनके विरोधियों का सन्देह-पात्र, होकर पिटना भी उसका परम कर्तव्य हो जाता था। किसी की कोई वस्तु खोते ही उस पर सन्देह की ऐसी वृष्टि आरम्भ होती कि विना चुराये ही वह चोर के समान कांपने लगता और तब उस 'चोर के घर छिछोर' की जो मरम्मत होती थी उसका स्मरण करके चीनी की आंखें आज भी व्यथा और अपमान से धक धक जलने लगती थीं।

सबके खाने के पात्र में बचा उच्छिष्ट एक तामचीनी के टेढ़े मेढ़े बरतन में, सिगार से जगह जगह जले हुए कागज से ढककर रख दिया जाता था जिसे वह हरी आंखों वाली काली बिल्ली के साथ मिलकर खाता था।

बहुत रात गए तक उसके नरक के साथी एक एक कर आते रहते और अंगीठी के पास सिकुड़ कर लेटे हुए बालक को ठुकराते हुए निकल जाते। उनके पैरों की आहट को पढ़ने का उसे अच्छा अभ्यास हो चला था। जो हल्के पैरों को जल्दी जल्दी रखता हुआ आता है उसे बहुत कुछ मिल गया है, जो शिथिल पैरों को घसीटता हुआ लौटता है वह खाली हाथ है, जो दीवार को टटोलता हुआ लड़खड़ाते पैरों से बढ़ता है वह शराब में सब खोकर बेसुध आया है, जो देहली से ठोकर खाकर धम धम पैर रखता हुआ घुसता है उसने किसी से झगड़ा मोल ले लिया है, आदि का ज्ञान उसे अनजान में ही प्राप्त हो गया था।

यदि दीक्षान्त संस्कार के उपरान्त विद्या के उपयोग का श्रीगणेश होते ही उसकी भेंट पिता के परिचित एक चीनी व्यापारी से न हो जाती तो

इस साधना से प्राप्त विद्वत्ता का क्या अन्त होता, यह बताना कठिन है। पर संयोग ने उसके जीवन की दिशा को इस प्रकार बदल दिया कि वह कपड़े की दूकान पर व्यापारी की विद्या सीखने लगा।

प्रशंसा के पुल बांधते बांधते वर्षो पुराना कपड़ा सबसे पहले उठा लाना, गज से इस तरह नापना कि जौ बराबर भी आगे न बढ़े चाहे अंगुल भर पीछे रह जाय, रुपये से लेकर पाई तक को खूब देखभाल कर लेना और लौटाते समय पुराने खोटे पैसे विशेष रूप से खनका खनका कर दे डालना आदि का ज्ञान कम रहस्यमय नहीं था। पर मालिक के साथ भोजन मिलने के कारण बिल्ली के संग उच्छिष्ट सहभोज की आवश्यकता नहीं रही और दूकान में सोने की व्यवस्था होने से अंगीठी के पास ठोकरों से पुरस्कृत होने की विवशता जाती रही। चीनी छोटी अवस्था में ही समझ गया था कि धन-संचय से सम्बन्ध रखने वाली सभी विद्यायें एक सी हैं, पर मनुष्य किसी का प्रयोग प्रतिष्ठापूर्वक कर सकता है और किसी का छिपा कर।

कुछ अधिक समझदार होने पर उसने अपनी अभागी बहिन को ढूंढ़ने का बहुत प्रयत्न किया, पर उसका पता न पा सका। ऐसी बालिकाओं का जीवन खतरे मे खाली नहीं रहता। कभी वे मूल्य देकर खरीदी जाती हैं और कभी बिना मूल्य के गायब कर दी जाती हैं। कभी वे निराश होकर आत्म-हत्या कर लेती हैं और कभी शराबी ही नशे में उन्हें जीवन से मुक्त कर देते हैं। उस रहस्य की सूत्रधारिणी विमाता भी सम्भवतः पुनर्विवाह कर किसी और को सुखी बनाने के लिए कहीं दूर चली गई थी। इस प्रकार उस दिशा में खोज का मार्ग ही बन्द हो गया।

इसी बीच में मालिक के काम से चीनी रंगून आया, फिर दो वर्ष कलकत्ते में रहा और तब अन्य साथियों के साथ उसे इस ओर आने का आदेश मिला। यहां शहर में एक चीनी जूते वाले के घर ठहरा है

और सवेरे आठ से बारह और दो से छः बजे तक फेरी लगाकर कपड़े बेचता रहता है।

चीनी की दो इच्छायें हैं, ईमानदार बनने की और बहिन को ढूंढ़ लेने की—जिनमें से एक की पूर्ति तो स्वयं उसी के हाथ में है और दूसरी के लिए वह प्रतिदिन भगवान बुद्ध से प्रार्थना करता है।

बीच बीच में वह महीनों के लिए बाहर चला जाता था, पर लौटते ही 'सिस्तर का वास्ते ई लाता है' कहता हुआ कुछ लेकर उपस्थित हो जाता। इस प्रकार उसे देखते देखते मैं इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि जब एक दिन वह 'सिस्तर का वास्ते' कहकर और शब्दों की खोज करने लगा तब मैं उसकी कठिनाई न समझ कर हंस पड़ी। धीरे धीरे पता चला—बुलावा आया है, वह लड़ने के लिये चाइना जायगा। इतनी जल्दी कपड़े कहां बेचे और न बेचने पर मालिक को हानि पहुँचा कर बेईमान कैसे बने! यदि मैं उसे आवश्यक रुपया देकर सब कपड़े ले लूं तो वह मालिक का हिसाब चुकता कर तुरन्त देश की ओर चल दे।

किसी दिन पिता का पता पूछने जाकर वह हकलाया था—आज भी संकोच से हकला रहा था। मैंने सोचने का अवकाश पाने के लिये प्रश्न किया 'तुम्हारे तो कोई है ही नहीं फिर बुलावा किसने भेजा?' चीनी की आंखें विस्मय से भरकर पूरी खुल गई—'हम कब बोला हमारा चाइना नहीं है? हम कब ऐसा बोला सिस्तर?' मुझे स्वयं अपने प्रश्न पर लज्जा आई; उसका इतना बड़ा चीन रहते वह अकेला कैसे होगा!

मेरे पास रुपया रहना ही कठिन है, अधिक रुपये की चर्चा ही क्या पर कुछ अपने पास खोज ढूंढ़ कर और कुछ दूसरों से उधार लेकर मैंने चीनी के जाने का प्रबन्ध किया। मुझे अन्तिम अभिवादन कर जब वह चञ्चल पैरों से जाने लगा तब मैंने पुकार कर कहा 'यह गज तो लेते

जाओ'—चीनी सहज स्मित के साथ घूमकर 'सिस्तर का वास्ते' ही कह सका । शेष शब्द उसके हकलाने में खो गए ।

और आज कई वर्ष हो चुके हैं—चीनी को फिर देखने की सम्भावना नहीं, उसकी बहिन से मेरा कोई परिचय नहीं, पर न जाने क्यों वे दोनों भाई बहिन मेरे स्मृति-पट से हटते ही नहीं।

चीनी की गठरी में से कई थान मैं अपने ग्रामीण बालकों के कुरते बना बनाकर खर्च कर चुकी हूँ, परन्तु अब भी तीन थान मेरी आलमारी में रखे हैं और लोहे का गज दीवार के कोने में खड़ा है । एक बार जब इन थानों को देखकर एक खादी-भक्त बहिन ने आक्षेप किया था 'जो लोग बाहर से विशुद्ध खद्दरधारी होते हैं वे भी विदेशी रेशम के थान खरीदकर रखते हैं, इसी से तो देश की उन्नति नहीं होती' तब मैं बड़े कष्ट से हँसी रोक सकी थी ।

वह जन्म का दुखियारा मातृ-पितृहीन और बहिन से बिछुड़ा हुआ चीनी भाई अपने समस्त स्नेह के एकमात्र आधार चीन में पहुँचने का आत्मतोष पा गया है, इसका कोई प्रमाण नहीं—पर मेरा मन यही कहता है ।

अंकोरा

बादामी रंग के पुराने कागज के टुकड़े पर लिखी हुई रसीद उँगलियों में थामे हुए जब में कुलियों के चित्रगुप्त अर्थात् ठेकेदार की ओर से मुंह फेर कर बाहर, बुझने से पहले जल उठने वाले दीपक जैसी सन्ध्या को देखने लगी तब उन्हें अपनी अधीनस्थ आत्माओं का लेखा-जोखा और अपनी महत्ता का वर्णन रोकना पड़ा। कई बार खांस खांस कर जब वृद्ध महोदय श्रोता की उदासीनता भंग न कर सके तब कुछ आगे की ओर झुके हुए दाहिने कान में मटमैला टूटे निबवाला कलम खोंस कर और टेढ़ी मेढ़ी उँगलियों में, बिना ढक्कनवाली और पानी मिली हुई फीकी स्याही से

भरी दावात यत्न से दबाकर, धीरे धीरे सीढ़ियो से नीचे उतर गए और उनके पीठ फेरते ही कितने ही कुली मेरे कमरे के सामने एकत्र होने लगे ।

यह डोटियाल संज्ञाधारी जीव भी विचित्र है । नैपाल, भूटान आदि मे जो कुली इस ओर आते है उनकी विशेषता का मापदण्ड बोझा उठाने की शक्तिमात्र है । उनमे प्राय: छोटा से छोटा कुली भी डेढ दो मन का बोझ उठाकर ऊँचे पहाड़ो की मीलों लम्बी चढ़ाई पार कर जाता है । पर रूप मे यह सब शिव के बराती हैं—केवल वे कुरूप है दीन नहीं और यह दीन अधिक है कुरूप कम !

कोई टाट का सिला विचित्र पैजामा और फटे हुए काले खुरदरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता गले मे लटकाये भालू के समान घूम रहा है । कोई कोपीनधारी तारतार फटा सूती कोट पहने, कमर से बोझ बांधने की मोटी रस्सी लपेटे और रूखे खड़े बालों को खुजलाता हुआ सेही जैसा कांटेदार जन्तु जान पड़ता है । किसी के, कठिन एड़ी और ऐंठी फैली उँगलियां वाले पैर सड़क कूटने के दुर्मुठ से स्पर्धा करते है और किसी के, स्वरचित मूज की खुरदरी चट्टी में सिकुड़ बंध कर पंजे की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं ।

कोई धूप में बैठ कर कपड़ों में से जुयें बीनता हुआ वानर का स्मरण दिलाता है और कोई दूकानदार मे मांग जांच कर मुख तथा हाथ-पैर में मले हुए तेल के कारण जल से बाहर निकले हुए जलजन्तु की तरह चमकता है । ये भी मनुष्य है इसे हम अभ्यासवश ही समझते है—इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं ।

ऐसे विविध अद्भुत रूपो की भीड़ देखकर मेरी मौसी तो कोने में दबक कर बैठ गई और भक्तिन बाहर देहली पर खड़ी होकर विस्मय की मुद्रा से उनका निरीक्षण परीक्षण करने लगी, क्योंकि दैन्य और विचित्रता का ऐसा

समन्वय तो हमारे गांवों में भी नहीं मिलता। मैंने कुछ उदासीन भाव से कहा 'तुम सब जाओ हमारा कुली जंगबहादुर है उसी को भेज दो।'

मेरी बात समझ कर उनमें परस्पर देखादेखी होने लगी—भीड़ में से कोई विशेष साहसी बोला 'माई जी ई है जंगिया—मैंने इस नाम में जंग-बहादुर को नहीं पहचान पाया, अतः फिर कहा 'जंगबहादुर को बुलाओ'—

वे विस्मित से एक दूसरे को धकियाने लगे। फिर एक व्यक्ति को आगे ठेल कर दूसरे ने कहा "यई तो जंगिया बोलना है।' जिसे ढकेला था उसमें अपने कुली के उपयुक्त महत्ता का लेशमात्र न पाकर मैंने सन्देह से प्रश्न किया 'क्या नाम है तुम्हारा?' उत्तर मिला—जंगबहादुर सिंह।

नाम ने नाम के आधार को ठीक से देखना आवश्यक कर दिया। पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उंगलियों के बीच में ढाल बनी हुई मूंज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी खुर न देनेवाले परमात्मा का उपहास कर रही थी। पांव से दो बालिश्त ऊँचा और ऊनी, सूती पैबन्दों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जाशीलता की विडम्बना जैसा लगता था। किसी से कभी मिले हुए पुराने कोट में, नीचे के मटमैले अस्तर की झांकी देती हुई ऊपरी तह तार तार फटकर झालरदार हो उठी थी और अब अपने पहनने वाले को एक झबरे जन्तु की भूमिका में उपस्थित करती थी। अस्पष्ट रंग और अनिश्चित रूप वाली दोपलिया टोपी के छेदों से रूखे बाल जहां तहां झांक कर मैले पानी और उसके बीच बीच में झांकते हुए सेवार की स्मृति करा देते थे।

घनी भौंहों के नीचे मुख चौड़ा और नाक कुछ गोल हो गई थी। हँसी से निरन्तर खुले हुए ओठों के कोने कान तक फैल कर गाल और कान के अन्तर को छिपा देते थे। छोटी और विरल मूंछों के काली डोरी जैसे छोर मुंह के दोनों ओर झूल कर, छोटे छोटे दांतों से प्रकट होने वाले बचपन का

विरोध कर रहे थे। एक ओर संकीर्ण माथे और दूसरी ओर छोटी गोल ठुड्ढी से सीमित चौड़े मुख को, रोकर पोंछी हुई सी छोटी आंखें वही सजल झलक देती थीं जो रेगिस्तान के जलाशय में सम्भव है। गेहुआं रंग निरन्तर धूप में रहने के कारण कहीं पुराने तांबे जैसा और कहीं झाईंदार हो गया है। बोझ बांधने की गांठगँठीली पुरानी रस्सी का एक छोर गले की माला बनता हुआ कन्धे से लटक रहा था, दूसरा कमरबन्द बनकर कोट के झबरेपन में कहीं छिपा कहीं प्रकट था। ऐसा ही था वह जंगबहादुर सिंह उर्फ जंगिया उसे अपने भाई धनसिंह के साथ मेरा सामान लेकर केदारनाथ होते हुए बदरिकानाथपुरी तक जाना और श्रीनगर लौटना था। एक रुपया प्रतिदिन के हिसाब से प्रत्येक की मजदूरी तय हुई थी जिसमें से एक आना फ़ी रुपया कमीशन, ठेकेदार का प्राप्य था।

'तुम्हारा भाई कहां है' पूछते ही 'धनिया ओ धनिया' की पुकार मच गई। पर बार बार सबके ढकेलने पर भी जो भाई के पीछे ही अड़ा रहा उसे मैंने बिना किसी के बताये ही धनसिंह समझ लिया। जंगबहादुर का चेहरा भी अपने छोटेपन के प्रति इतना सतर्क था कि उसे देखकर किसी पौराणिक अनुज का स्मरण हो आता था। गोल मटोल कुछ पुष्ट शरीर वाले धनिया की आकृति भी उसके स्वभाव के अनुरूप थी। विरल भूरी भौंहों की सरल रेखा और छोटी नाक की कुछ नुकीली नोक उसकी सरलता का भी परिचय देती थी और तेजस्विता का भी। ओठों का दाहिना कोना कुछ ऊपर की ओर खिंचा सा रहता था जिससे उसके मुख पर मुस्कराने का भाव स्थायी हो गया था। रंग की स्वच्छता और त्वचा की चिकनाहट से प्रकट होता था कि कुली जीवन की सारी कठोरता उसने अभी नहीं झेली है। टाट के पुराने पैजामे और जीन के फटे कोट ने उसे पराजित सिपाही की भूमिका दे डाली थी जो उसके मुख के भाव के साथ विरोधाभास उत्पन्न करती थी।

पहाड़ के ऊंचे नीचे रास्ते में मुझे अपना और अपने साथियों का जीवन इन्हें सौंपना होगा और मार्ग में जीवन की सब सुविधाओं के लिए यह मेरे संरक्षण में आ गए हैं, इस विचार ने उन दोनों कुलियों के प्रति मेरे मन में अयाचित ममता उत्पन्न कर दी। कहा—तुम दोनों सामान देख लो अधिक लगे तो एक कुली और ठीक कर लिया जायगा।

आगे आगे जंगिया और पीछे पीछे धनिया ने कमरे में पैर रक्खा और मौसी तथा भक्तिन को विस्मित करते हुए वे भारी बंडलों को अनायास उठा उठाकर बोझ का अनुमान लगाने लगे।

मैं पैदल ही लम्बी लम्बी पर्वतीय यात्रायें कर चुकी हूँ जिनमें सफलता का मूलमन्त्र सामान कम रखना ही माना जाता है। अतः इस सम्बन्ध में मुझ से भूल होना सम्भव नहीं। फिर मैं यह विश्वास नहीं करती कि जिन यात्राओं में खाद्य सामग्री मिल जाने की सुविधायें हैं वहां भी घी के पीपे और बिस्कुट के बीसियों टिन ढोते फिरा जावे। हिम के सुन्दर शिखरों की छाया में पॉल्सन का बटर और हन्टले पामर्स के बिस्कुट खाना मेरी समझ में कम आता है, पर वहीं लकड़ी कण्ड बटोर कर आलू भूनने और बाटी बनाने का सुख मैं विशेषरूप से जानती हूँ। मेरी मौसी अवश्य कुछ अधिक सामान ले जाने की इच्छा रखती थीं, परन्तु मेरी छोटी सी इच्छा को भी बहुत मूल्य देने का उनका स्वभाव है। उनके बेटे जिन तीर्थों में उन्हें नहीं ले जा सकते वहीं मैं ले जा रही हूँ, अतः मैं सब बेटों से बड़ी हूँ और मेरी बुद्धि सब प्रकार विश्वसनीय है, इस सम्बन्ध में उन्हें कोई सन्देह नहीं था!

इस प्रकार सबके इने गिने कपड़े, पर सारे बिस्तर, दवा का बक्स, कपड़े साफ़ करने के लिए साबुन आदि आवश्यक वस्तुयें ही साथ थीं जिन्हें जंगबहादुर ने पास कर दिया और दूसरे दिन सबेरे ही हमारी यात्रा आरम्भ हुई।

ऐसी यात्रा मे चलचित्र के समान जो जीवन दिखाई देता है उससे हम किसी जाति के सम्बन्ध मे ऐसा बहुत कुछ ज्ञातव्य जान सकते है जो अन्य किसी प्रकार सम्भव नही।

घर मे व्यक्ति अपने आश्रितो और सेवको के प्रति अपने व्यवहार को छिपा सकता है, कृत्रिम बना सकता है, परन्तु यात्रा में ऐसा सहज नही होता। मनुष्य मे जो भी स्वार्थपरता, विवेकहीनता, क्रूरता और असहिष्णुता रहती है वह ऐसी यात्रा मे पग पग पर प्रगट होती चलती है। कुली को पैसे देते समय, उसके विश्राम भोजन का समय निश्चित करते हुए, साथियो के सुख दुःख की चिन्ता और सहायता के अवसर पर मनुष्य अपने अन्तरतम का ऐसा आभास दे देता है जिससे उसके चरित्र की अच्छी व्याख्या हो सकती है।

एक ओर श्वेत शतदल की पखड़ियो की तरह कुछ खुली कुछ बन्द कही स्पष्ट कही अलक्ष्य पर्वत-श्रेणियाँ और दूसरी ओर कही हरितदल से फैले खेत और कही गली चादी जैसे स्रोतो के बीच मे जो जीवन गतिशील है उसे देख कर प्रसन्नता से अधिक करुणा आती है।

डाडी मे बैठा हुआ कोई लम्बोदर अपने हाफते हुए कुलियो को सर्प-सर्प कह कर इस तरह दौड़ाता है कि उसे देखकर हमे, स्वर्ग पर अधिकार पाकर भी देवता न बन पाने वाले नहुष का स्मरण हो आता है। किसी डाडी मे कोई सम्पन्न घर की शृगारिन प्रसाधित महिला पर्वत के सौन्दर्य की उपेक्षा कर झपकियां लेती जाती है। किसी मे घुटे सिर और सूखी लकड़ी से शरीर वाली कोई वृद्धा, कटुतिक्त अनुपान से उत्पन्न मुद्रा धारण किये और माला मे आख गड़ाए हुए हिलती डुलती चली जाती है। कहीं कोई धनहीन प्रौढ़ झम्पान मे बैठ कर दोनो पाव लटकाये हुए, याचना-भाव से आकाश की ओर ताकता है कहीं कोई छोटे टट्टू पर विराजमान वीर, घोड़े वाले को पूछ

पकड़ कर चलने के लिए मना कर रहा है, क्योंकि इस व्यायाम से वह सभीत हो जाता है। कहीं डांडी में मृगचर्म बिछा कर बैठे हुए मठाधीश, शंखझालर लेकर पैदल चलने वाले शिष्यों को देख देखकर सदेह स्वर्गारोहण का सुख अनुभव कर रहे हैं।

इस डांडी, झप्पान, टट्टू आदि से भरे पूरे दल के अतिरिक्त एक दूसरा दल भी है जिसमें दरिद्रों का ही बाहुल्य है। प्रायः रुपयों के अभाव में इनमें से अधिकांश विना टिकट ही रेलयात्रा समाप्त कर आने में निपुण होते हैं। फिर पांच रुपये से लेकर पांच आने तक अंटी में रखकर और गठरी में सत्तू-चबेना-गुड़ का पाथेय लेकर चलते हैं। जीवित लौटने के साधनों के अभाव में इनकी यात्रा सब से अन्तिम विदा के उपरान्त ही आरम्भ होती है। राह में जहां बीमार हुए साथी छोड़कर आगे बढ़ गए। दो चार दिन वहां ठहरने से सबका पाथेय और रुपया धेली चुक जाने का डर रहता है और उस दशा में किसी का भी लक्ष्य तक पहुँचना असम्भव हो सकता है इसी से वह सब घर से ही ऐसा समझौता करके चलते हैं, क्योंकि एक का न पहुँचना तो उसके व्यक्तिगत पाप का परिणाम है, पर यदि उसके कारण अन्य भी न पहुँच सकें तो दूसरों को न पहुँचने देने का पाप भी उसके सिर रहेगा।

चट्टी चट्टी पर इनमें से दो एक बीमार पड़ते रहते हैं,और कहीं कहीं मर भी जाते हैं। अन्त्येष्टि का काम यात्रियों से मांग जांच कर सम्पन्न किया जाता है। साधन न मिलने पर गहरा खड्ड तो स्वाभाविक समाधि है ही।

पैदल चलने वालों में कभी कभी भ्रमणप्रिय टूरिस्ट भी आते जाते मिल जाते हैं। वे यात्रियों के अस्त्रशस्त्र से लैस तो होते ही हैं उनका पैदल चलना भी मनोविनोद के लिए ही रहता है, क्योंकि अधिकांश के साथ टट्टू रहते हैं जिन्हें यात्रियों के सुविधानुसार कभी आगे कभी पीछे चलना पड़ता है। दरिद्र पैदल चलनेवालों से न डांडीवाले बोलते हैं न ये फैशनेबिल यात्री।

डांडियों के काफले में भी मृत्यु अपरिचित नहीं, पर वह कुलियों तक ही सीमित रहती है। कभी किसी कुली को हैज़ा हो गया, किसी को बुखार आ गया, किसी के गहरी चोट आ गई। बस तुरन्त दूसरा कुली ठीक कर लिया जाता है और यात्रा अविराम चलती रहती है। बीमार कुली भाग्य पर छोड़ दिया जाता है। जीवित रहा तो जहां से चले थे वहीं लौट कर दूसरा यात्री खोज लेता है, मर गया तो फेंक देने की सुविधा का अभाव नहीं। डांडियों के साथ सामान ढोने वाले कुली भी रहते हैं, पर उन्हें भी डांडियों के साथ ही दौड़ना पड़ता है।

इन यात्रियों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी रहती है जैसे हमारे यहां इक्केवाले की। वह बारह रुपये का टट्टू खरीद लाता है और उसे रात दिन इस तरह दौड़ाता है कि कम से कम समय में छत्तीस वसूल हो जांय। थके टूटे टट्टू के मर जाने पर वह बारह में नया ख़रीदने के उपरान्त भी लाभ में ही रहता है।

यात्री भी एक रुपया प्रतिदिन देकर कुली को खरीदता है, इसलिए लाभ की दृष्टि से तीन दिन का रास्ता एक दिन में तय करने की इच्छा स्वाभाविक है, अन्यथा वह घाटे में रहेगा।

यात्री तो बैठा बैठा ऊंघता रहता है, पकवान, सूखे मेवे आदि उसके साथ होते हैं, अतः अधिक थकावट या अधिक भूख का प्रश्न ही नहीं उठता, पर वह कुलियों के विश्राम और भोजन के समय में से घटाता रहता है। सवेरे ही कह देता है कि बीस मील रास्ता तय करना होगा। चाहे जिस तरह चलो पर शाम तक इतना न चलने पर मजदूरी काट ली जायगी। और वे बेचारे मनुष्य-यान हांफ-हांफ कर मुह से फिचकुर निकालते हुए दौड़ते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि सबल वे ही हैं। यदि उनमें से एक भी भृकुटियां टेढ़ी कर अपने सवार की ओर देखकर साभिप्राय इस सैकड़ों फीट

गहरे खड्ड की ओर देखने लगे तो सवार बेहोश हो जायगा। पर उन्हें क्रोध आवे तो कैसे !

इसी स्वर्ग के हृदय में बसी मृत्यु और पवित्रता के भीतर छिपी व्याधि में से हमें भी मार्ग बनाना पड़ा। मैं तो डांडी में बैठती नहीं, दूसरे भी पैदल ही चले। मनुष्य के भाव के समान संप्रेषणीय और कुछ नहीं है इसी से हमारे कुली स्नेहशील साथी बन सके और आज उनकी स्मृति को मैं उस तीर्थ का पुण्यफल ही मानती हूँ। उन दोनों के पास दो टाट के टुकड़े और एक फटी काली कमली थी जिसे चौड़ाई की ओर से ओढ़ना कठिन था और लम्बाई की ओर से ओढ़ने पर यदि पैर ढक जाते थे तो सिर का बाहर रहना अनिवार्य था और सिर ढक लेने पर पैरों का बहिष्कार स्वाभाविक हो जाता था।

मलिन बिना धुले कपड़ों में भी उन दोनों भाइयों का स्वच्छता विषयक ज्ञान खो नहीं गया था। चट्टी में सबसे दूर अँधेरे कोने को खोजकर वे कड़-कड़ाते जाड़े में कपड़े दूर रख कौपीन-धारी बाबा जी के वेश में भात बनाते खाते थे। स्वच्छ कपड़ों के अभाव में आचार की समस्या का यह समाधान निमोनिया को निमंत्रण है, यह मैं प्रयत्न करके भी उन्हें समझा न सकी।

बर्तन के नाम से प्रत्येक के पास एक एक लोहे का तसला था जिसमें से एक में दाल बन जाती थी, दूसरे में भात। कभी कभी दाल का खर्च बचाने के लिए वे झरनों के किनारे खोजकर लिंगूणा नाम का जंगली शाक तोड़ लाते और उसी के साथ स्वाद ले लेकर कच्ची पक्की मोटी रोटियां खाते थे। मार्ग में आलू के अतिरिक्त कोई हरी तरकारी मिलती नहीं, पर इसे जंगलियों के खाने योग्य विषैली घास समझकर कोई खाने पर राजी नहीं होता था।

एक बार हठ पूर्वक शाक का आतिथ्य स्वीकार कर लेने पर उसमें मेरा

भी हिस्सा रहने लगा—और फिर तो उसे हमारे व्यंजनों में महत्वपूर्ण स्थान मिल गया।

मार्ग में हम सब उनके पीछे चलते थे, अतः शेष शरीर बोझ की ओट में होने के कारण केवल उनके पैर ही मेरे निरीक्षण की सीमा में रहते थे। धनसिंह की पलकें चाहे संकोच से न उठती हों पर उसके पैर भाई के साथ दृढ़ता से उठते थे। जब कभी चढ़ाई पर उनके पंजों का भार एड़ियों पर पड़ने लगता और आगे रखा हुआ पैर पीछे खिसकता जान पड़ता तब मैं बिना उनका मुख देखे ही थकावट का अनुमान लगा लेती थी। परन्तु 'जंगबहादुर थक गए हो' पूछते ही विचित्र भाषा में वही परिचित उत्तर मिलता 'अच्छा है मां ! कुछ तकलीस नहीं'। अच्छा और तकलीफ़ के अपभ्रंश रूपों पर यदि हँसी नहीं आती थी तो स्वर की गम्भीरता के कारण।

जीवन में बहुत छोटी अवस्था से ही मैं मा का सम्बोधन और उसके उपयुक्त ममता का उपहार पाती रही हूँ, परन्तु उन पर्वत-पुत्रों के मा सम्बोधन में जो कोमल स्पर्श और ममता की सहज स्वीकृति रहती थी वह अन्यत्र दुर्लभ रही है।

धनसिंह तो संकोच के कारण सिर नहीं उठा पाता था, पर जंगिया राह में कई बार घूम-घूम कर हमारी आवश्यकताओं और थकावट का पता लेता रहता था। अन्त में एक दिन उसने अमूल्य वस्तु मांग बैठने वाले याचक की मुद्रा से कहा 'मा आप आगे चलना तो अच्छा होना ! हम पीछू देखता है, फिर देखता है, बोझा से गरदन नहीं घूमता। आगे रहेगा तो हम सिर ऊँचा करके देख लेगा—वह गया मा, वह जाता है—और हमारा पांव जल्दी उठेगा।' तब से हम लोग आगे रहने लगे।

बक्स से कोई दवा खोज कर 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' की कहावत चरितार्थ की और भक्तिन चाय का अनुपान प्रस्तुत कर चतुर नर्स के गर्व का अनुभव करने लगी। जंगबहादुर को बैठे देख जब मैंने उसे बीमार के पैर दबाने का आदेश दिया तब परिचित संकोच के साथ उत्तर मिला 'मैं बड़ा हूँ मां! वह सरम करता है कैसा करेगा'?

इस शिष्टाचार की बात सुनकर मुझे विस्मय होना स्वाभाविक था। यहां तो एक सम्भ्रान्त परिवार की वृद्धा माता ने बताया था कि उसका लड़का जब तब उस पर हाथ चला बैठता है और मातृत्व की दोहाई देने पर उत्तर मिलता है 'वह जमाना गया जब तुम सब पैर पुजाती थीं—पैदा किया तो अपने शौक के लिए किया—क्या इसी कारण हम तुम पर चन्दन-चावल चढ़ाते-चढ़ाते जन्म बिता दें?' जब जन्मदात्री के सम्बन्ध में मनुष्य इतना शिष्ट हो उठा है तब सहोदरता विषयक शिष्टता की चर्चा करना व्यर्थ होगा।

पर जंगबहादुर का अनुज इतना प्रगतिशील नहीं हो पाया, अतः बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नहीं।

कुली के बीमार पड़ जाने पर यात्री ठहरते नहीं—चट्टी से या निकट के गांव से दूसरा कुली बुलाकर तुरन्त ही आगे बढ़ जाते हैं। इस नियम के कारण उन दोनों भाइयों के सरल सहज स्नेह का जो परिचय अनायास मिल गया वह अन्य परिस्थितियों में सुलभ न हो पाता।

जंगबहादुर जानता था कि छोटे भाई की जगह दूसरा कुली ले लेगा। पर वह उसे छोड़कर चला जावे तो उसकी मां को क्या उत्तर देगा! धनिया न बीमारी की दशा में लौट सकता था न चट्टी में अकेले पड़े-पड़े अच्छा हो सकता था। कुछ दिन ठहर जाने पर रुपया समाप्त हो जाना निश्चित था पर दूसरा बोझ मिलना अनिश्चित। ऐसी स्थिति में उसे छोड़कर बड़ा भाई कर्तव्यच्युत हुए बिना नहीं रह सकता। अतः उसने निश्चय कर लिया कि

यह सवेरे दो नये कुली बुला लावेगा और स्वयं धनिया की देखभाल के लिए रुक जायगा।

धनिया ने भाई के मुख से उसका निश्चय न सुनने पर भी सब कुछ जान लिया था। उसे विश्वास था कि उसका भाई उसे छोड़ न सकेगा, अतः उसकी भी मजदूरी चली जायगी। जो थोड़े बहुत रुपये मिलेंगे वे भी बीमारी में खर्च हो जायेंगे—तब दूसरे बोझ की प्रतीक्षा करना भी कठिन होगा और लौटना भी। उसने निश्चय किया कि वह जैसे भी बनेगा उठकर बोझ लेकर चलेगा।

सवेरे झरने से हाथ मुंह धोकर लौटने पर मैंने चट्टी के नीचे वाले खण्ड में जंगबहादुर को दो नये कुलियों के साथ प्रतीक्षा करते पाया और ऊपर धनसिंह को कपड़े की पट्टी से सिर कस कर बोझा सँभालते देखा। 'क्या तुम अच्छे हो गए' सुनकर उसने थकावट से उत्पन्न पसीने की बूंदें पोंछते हुए बताया कि वह चल सकेगा। उसके न जाने से भाई का भी नुकसान होगा।

उन दोनों चचेरे भाइयों के स्नेह भाव ने कुछ क्षण के लिए मुझे मूक कर दिया। मैं दो तीन दिन वहां ठहर कर उन्हीं के साथ यात्रा आरम्भ करूँगी यह सुनकर उनके मुखों पर विस्मय का भाव उदय हो आया उसे देख कर ग्लानि भी हुई और खिन्नता भी। मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया है कि उसका अभाव विस्मय उत्पन्न करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।

धनसिंह तीसरे दिन अच्छा हो गया और चौथे दिन हम फिर चले।

उन दोनों के पारस्परिक व्यवहार सौहार्द आदि ने मेरे मन में उनके प्रति जो ममतामय आदर का भाव उत्पन्न कर दिया था वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरी कुछ किताबें, दवा का बक्स, बर्तन आदि वस्तुयें भारी

थीं, अतः उनमें से प्रत्येक उन्हें अपने बोझ में बांधकर दूसरे का भार हल्का कर देना चाहता था।

सवेरे एक दूसरे से पहले उठने का प्रयत्न करता था जिससे सब भारी चीजें अपने बोझ में बांधने का अवसर पा सके। एक बताशा देने पर भी एक भाई दूसरे की खोज में दौड़ पड़ता था। कोई देखने योग्य वस्तु सामने आते ही एक दूसरे को पुकारने लगता था। वे दोनों ऐसे दो बालकों के समान थे जिन्हें किसी ने जादू की छड़ी से छूकर इतना बड़ा कर दिया हो।

मार्ग के अन्य कुलियों के प्रति भी उनके व्यवहार में संवेदनशीलता और सहानुभूति ही रहती थी; एक बार पहाड़ से उतरती हुई गाय इतने वेग से मार्ग तक फिसलती चली आई, कि उसके खुर की चोट से एक कुली का पांव घायल हो गया। धनसिंह को सामान सौंपने के उपरान्त जंगबहादुर उस लोहूलुहान पैर वाले कुली को पीठ पर लादकर झरने तक ले गया और हमारे मरहम पट्टी कर चुकने पर उसे डेढ़ मील दूर अगली चट्टी तक पहुँचाया। इतना नहीं उसे अपना और उसका बोझ भी लाना पड़ा और अंधेरे में ठिठुरते हुए, अपने फटे कपड़ों में लगे रक्त के दाग भी साफ़ करने पड़े। पर प्रश्न करने वाला उससे एक ही उत्तर पा सकता था 'कुछ तकलीस नहीं, अस्सा है'।

धनसिंह संकोची होने के कारण बातचीत कम करता था पर जंगबहादुर जब तब बैठकर अपने माता, पिता, गांव, घर आदि की कहीं सुखद कहीं दुखद कथा कहता रहता।

वह नैपाल के छोटे ग्राम में रहने वाले माता पिता का अन्तिम पुत्र है—जीविका का अन्य साधन न होने के कारण वह बचपन से ही अन्य कुली साथियों के साथ इस ओर आने लगा। गर्म्मियों के आरम्भ में वे आते और शरद के आरम्भ में लौट जाते हैं। किसी को मजदूरी के सिलसिले में

कैलास, किसी को पिण्डारी और किसी को बदरी केदार की यात्रा करनी पड़ती है। ठेकेदार के पास सबके नाम और नम्बर रहते हैं। यदि कोई कुली लौट कर नहीं आता और समाचार भी नहीं मिलता तो वह मरा समझ लिया जाता है। इसी प्रकार जब कोई सीजन के अन्त में घर नहीं लौटता और न साथियों के द्वारा कोई समाचार भेजता है तब घरवाले भी उसे महायात्रा का यात्री मानकर क्रिया-कर्म द्वारा उसका पथ सुगम बनाने का प्रयत्न करते हैं।

जंगबहादुर अनेक बार आपत्तियों में पड़ चुका है क्योंकि वह अधिक कमाने की इच्छा से दूर दूर की यात्रायें ही नहीं करता, एक सीजन में कई कई यात्रायें कर डालता है। उसके अनिश्चित जीवन के कारण ही विवाह योग्य कन्याओं के पिता उसे जामाता होने के उपयुक्त नहीं मानते थे। परन्तु दो वर्ष पहले उसे अविवाहित रहने के शाप से मुक्ति मिल चुकी है। वयस्क वधू के माता-पिता थे ही नहीं। सम्बन्धियों ने सोचा—चाहे वर किसी पर्वत-शिखर पर हिम-समाधि ले ले, चाहे धनकुबेर बनकर लौटे, कन्या रहेगी तो ससुराल ही में, अतः बेचारे अभिभावक तो कर्तव्यमुक्त हो सकेंगे।

पिछले वर्ष जंगबहादुर मजदूरी के लिए आया ही नहीं था, इस वर्ष खेत में कुछ हुआ नहीं और पत्नी ने पुत्र रत्न उपहार दे डाला। अब तो कुछ न कुछ कमाने का प्रश्न उग्र हो उठा।

जब वह घर से चला तब उसका पुत्र दो मास का हो चुका था पर वह इतना दुर्बल और छोटा था कि पिता उसे गोद में लेने का भी साहस नहीं कर सका। अब वह खाने पीने से बची हुई मज़दूरी घर ले जाने के लिए जमा कर रहा है और जो कुछ ईनाम में मिल जाता है उससे पुत्र के लिए एक टोपी और कुरता बनाने की इच्छा रखता है। युवती पत्नी ने बार बार आंखें पोंछते पोंछते, फटा आंचल फैला फैलाकर विनती की थी कि भले आदमी के साथ जाना और बोझ लेकर एक बार से अधिक मत चढ़ाई

करना। पिता ने पीठ पर हाथ रखकर और आकाश की ओर धुंधली आंखें उठाकर मानो उसे परमात्मा को सौंप दिया था। और मां तो गांव की सीमा के बाहर तक रोती रोती चली आई थी। बड़ी कठिनाई से अनेक आश्वासन देने पर भी वह लौटी नहीं, वरन् वहीं एक जरा-जीर्ण पेड़ का सहारा लेकर दृष्टि-पथ से बाहर जाते हुए पुत्र को आंसुओं के तार से बांध लेने का निष्फल प्रयत्न करती रही। विदा का यह क्रम तो सनातन था, पर इस वर्ष उस अनुष्ठान में भाग लेने के लिए विकल पत्नी और मौन पुत्र और बढ़ गये थे। जंगबहादुर को परम समर्थ जानकर उसकी विधवा काकी ने भी अपना पुत्र उसे सौंप दिया था, इसी से अब वह ऐसे ही यात्री की खोज में रहता है जो उन दोनों को साथ ले चले।

बदरीनाथ की ओर मेरी यह दूसरी यात्रा थी, इसीसे मैंने कम से कम समय में, प्रशान्त अलकनन्दा के तट पर बसी उस अलकापुरी में पहुंच जाने के लिए केदार का पथ छोड़ देना ठीक समझा। पर जब वहां से लौटकर रुद्रप्रयाग पहुंचे जो उत्ताल तरंगों में ताण्डव करती हुई अलकनन्दा के किनारे, तूफान में क्षण भर ठहरे हुए फूल का स्मरण दिलाता था, तब केदार न जाने का पश्चात्ताप गहरा हो गया।

जिन्होंने, पांच जल की धाराओं से घिरा और रंग-बिरंगे फूलों में छिपे चरणों से लेकर शून्य नीलिमा में प्रकट मस्तक तक सफ़ेद हिम में समाविस्थ केदार का पर्वत देखा है वे ही उसका आकर्षण जान सकते हैं। मीलों दूर से ही वह उज्ज्वल शिखर अक्षरहीन आमंत्रण के समान खुला दिखाई देता है। जैसे जैसे हम उसकी ओर बढ़ते हैं वह विस्तार में बढ़ता जाता है और उसकी रजत-विद्युत लेखाओं के समान झिलमिलाती हुई रेखायें स्पष्टतर होती जाती हैं। लौटते समय जिस क्षण वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है उस समय हम एक विचित्र अकेलेपन का अनुभव करते हैं।

रुद्रप्रयाग पहुंचकर कुछ साथी इतने थक गए थे कि इतनी लम्बी चढ़ाई के लिए साहस न बांध सके। वास्तव में बदरीनाथ के पर्वत-शिखर से केदार का शिखर केवल ढाई कोस के अन्तर पर स्थित है पर वहां तक पहुंचने में नौ दिन का समय लगता है। 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की कहावत के मूल में सम्भवतः यही सत्य है।

जब मैंने वहां जाने का निश्चय कर लिया तब विशेष थके साथी रुद्र-प्रयाग में हमारी प्रतीक्षा और विश्राम करके 'एक पंथ दो काज' को चरितार्थ करने के लिए प्रस्तुत हो गए। जाने वालों के सामान के लिए एक कुली पर्याप्त था, अतः दूसरे कुली की समस्या का समाधान आवश्यक हो उठा। मेरी व्यक्तिगत इच्छा थी कि दूसरा कुली भी यात्रियों के साथ विश्राम करे और अट्ठारह दिन के उपरान्त हमारे लौटने पर साथ चले।

पर जंगबहादुर मां जी का अट्ठारह रुपया मुफ़्त कैसे ले ले। उसने बहुत संकोच और बरदान-याचक की मुद्रा से जो कहा उसका आशय था कि वह मां जी को जान गया है, अतः विश्वास पूर्वक धनसिंह को छोड़ कर जा सकता है। यहां से श्रीनगर पहुंचकर वह नये यात्री की खोज भी करेगा और भाई की प्रतीक्षा भी। सबके लौट आने पर वह धनिया के साथ दूसरी यात्रा करेगा।

जंगवीर के स्वार्थत्याग पर कोई काव्य चाहे न लिखा जावे, पर मेरे हृदय में उसकी स्मृति एक कोमल मधुर कविता है। जब मैंने जंगवीर को अपने साथ चलने का आदेश दिया और धनसिंह को रुद्रप्रयाग में विश्राम का, तब उसकी आंखें अधिक सजल हो आईं या कण्ठ अधिक गद्‌गद्‌ हो उठा यह बताना कठिन है। उसने बहुत साहस से लौट जाने का प्रस्ताव किया था, पर हम सब का विछोह सहना उसके लिए कठिन था। कई दिन बाद उसने अपनी अटपटी भाषा में बताया था 'हम हियां सरम से, अदब से नहीं

रोया—फिर दूर जाकर जोर से रोया—सोचा मां जी जाता है और हमारे भीतर कैसा कैसा तो होने लगा।'

वह यात्रा भी समाप्त हो गई और तब एक दिन हम सबको बस पर बठा कर वे दोनों भाई खोये से खड़े रह गए। जंगवीर ने आंसू रोकने का प्रयास करते करते कहा 'मां जी जीता रहना फिर आना, जंगिया का नाम चीठी भेजना।' धनिया सदा के समान पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाये, बीच बीच में टपकते आंसुओं की भाषा में विदा दे रहा था। आज वे दोनों पर्वतपुत्र कहां होंगे सो तो मैं बता ही नहीं सकती, पर उनकी मां जी होकर मुझे जो सम्मान मिला वह भी बताना सहज नहीं।

चार

पहले पहले अरैल के भग्नावशेष में एक पक्की पर टूटी फूटी इमारत देखकर मैंने उसकी दरकी और प्लास्टर रहित दीवार पर कन्डे थापने में तन्मय एक स्त्री से पूछा 'यह किसका घर है' !

जिससे प्रश्न किया गया था उसने अपने खरखरे स्वर को और अधिक रूखा बनाकर उत्तर दिया 'तोहका का करै का है ? शहराती मेहरारुन के का काम काज नाहिन बा जौन हियां उहां गस्ता घूमै चल देती हैं ?'

दुबरी की वह अपने कर्कशापन के लिए प्रसिद्ध है। बिखरे हुए बालों की रूखी और मैली कुचैली लटों में से एक दो उसके पपड़ी पड़े हुए ओठों पर चिपकी रहती हैं। पक्के रंग का श्याम शरीर धूल के अनेक आवरणों में छिपकर इतना धूसरित हो उठता है कि मटमैली धोती उसका एक अंग ही जान पड़ती है। गोबर रूपी मेंहदी से नित्य रञ्जित हाथों की प्रत्येक उंगली युद्ध के अनेक रहस्यमय संकेत छिपाये

रहती है। उसकी मित्रता का मूल तत्व 'करु परितोष मोर संग्रामा' में छिपा रहता है, क्योंकि विना वाग्युद्ध में पराजित हुए वह किसी से वोलने में भी हीनता समझती है। यदि कोई उसको युद्ध की चुनौती अस्वीकार कर दे तव तो वह उसकी दृष्टि में मित्रता के योग्य ही नहीं रहता।

मैं तव उसके स्वभाव के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण इतिवृत्त नहीं जानती थी। इसके अतिरिक्त मैं ऐसी अभ्यर्थना के लिए भी अनभ्यस्त नहीं, क्योंकि दरिद्र और असंख्य अभावों से भरे ग्रामों में ऐसे चिड़चिड़े स्वभाव की स्थिति स्वाभाविक ही रहती है। फिर अरैल तो जरायमपेशों का घर माना जाता है। वहां शिष्टता और सरल सौजन्य की आशा लेकर जाने वाले कम हैं। मैं जानती थी उस पर कड़े उत्तर का प्रभाव वही होगा जो लोहे के वाण का पत्थर के लक्ष्य पर सम्भव है। इसी से संधि के प्रस्ताव जैसा उत्तर सोचने में कुछ क्षण लगे।

पर भक्तिन तो ऐसा उत्तर पाकर चुप हो जाने को, युद्ध में पीठ दिखाने के समान निन्द्य समझती है, अतः उसने तुरन्त ही कहा 'शहर मां शोर परा है कि ई गांव,की मलका कन्डा विनती हैं, गोवर पथती हैं, तौन उनहीं के दरसन वरे दौरत आइत है। अउर का।'

इस तिक्त उत्तर से जो वाग्विस्फोट होता है मानो उसी को रोकने के लिए दूसरे टीले पर वने छोटे मंदिर के निकटवर्ती कच्चे घर के द्वार से एक मझोले कद की दुवली पतली स्त्री निकल आई। किसी दिन लाल चुनरी का नाम पाने वाली पर अव खपरैल के रंग से स्पर्धा करने वाली धोती का घूंघट भौंहों तक खींचकर उसने सलज्ज भाव से मन्द मधुर और अभ्यर्थना भरे स्वर में कहा 'का पूछत रही मां जी ? का सहर से अरैल देखै आई हैं ?'

अभ्यर्थना के दो भिन्न छोरों के वीच में मेरी स्थिति कुछ विचित्र-सी हो गई। जैसे एक ओर खींचकर छोड़ा हुआ पेन्डुलम उतने ही वेग से

दूसरी ओर जा टकराता है वैसे ही दुवरी की बहू की अभ्यर्थना ने मुझे मुन्नू की माई के लिपे पुते चबूतरे पर पहुँचा दिया।

मुन्नू की माई को सुन्दरी कहना असत्य है और कुरूप कहना कठिन। वास्तव में उसका सौन्दर्य रेखाओं में न रहकर भाव में स्थिति रखता है, इसी से दृष्टि उसे नहीं खोज पाती पर हृदय उसे आनायास ही अनुभव कर लेता है। साधारण सांवले रंग और विवर्ण गालों के कारण कुछ लम्बे जान पड़ने वाले मुख में कोई विशेषता नहीं। नाक का नुकीलापन यदि बुद्धि की तीक्ष्णता का पता न देता तो उसका छोटापन मूर्खता का परिचायक वन जाता। आंखें न बड़ी न छोटी पर एक विचित्र आभा से उद्दीप्त। पतले ओठ छोटे सफेद दांतों की झांकी में अकारण प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। पर उनके बन्द होते ही उन पर एक नामहीन विषाद की छाया आ जाती है। हाथ पैर छोटे छोटे पर मुख के विपरीत कठोर हैं। शरीर में लचीलेपन के साथ ही वाण के समान एक सीधापन है जिसे वह सिर झुका कर कुछ कुछ छिपा लेती है।

बेवाइयों से भरे छोटे पैरों में कांसे के कड़े घिसते घिसते चपटे और तंग हो गए हैं, अतः बचपन से अब तक बदले न जाने की घोषणा करते हैं। कड़ी उँगलियों वाले हाथों की चपटी कलाई को घेरने वाली मैल भरी घिसी चूड़ियां ऐसी जान पड़ती हैं मानो हाथ के साथ ही उत्पन्न हुई हैं।

ग्राम की सम्भ्रान्त कुलवधुओं के समान ही मुन्नू की माई मधुर-भाषिणी, सलज्ज और सेवा-परायणा है। पर उस विजन में उसका जीवन जंगली फूल के समान ही उपेक्षा और अपरिचय के बीच में खिला है।

मुन्नू की माई के कारण ही मैं अरैल में रहने वाली दूर-देशिनी वृद्धा और उसके बूढ़े भाई से परिचित हो सकी जो आज मेरे परिवार के व्यक्ति हो रहे हैं। उसी ने पटेल वावा के टूटे फूटे चौपाल को लीप पोत कर इतना सुन्दर वना दिया कि आज वह विना द्वार-कपाट का कच्चा घर मेरे लिए

सौ बंगलों से अधिक मूल्यवान हो उठा है। आज भी वह उस खण्डहर के शेष उच्छ्वास के समान इधर उधर दौड़ती रहती है।

बालक मुन्नू को देखकर जान पड़ता है कि उसकी मा ने अपने किसी मिटते हुए स्वप्न का एक खण्ड अंचल में छिपा कर बचा लिया है। गोल-मटोल मुख, गोलाकार आंखें, गोलाकृति नाक, सब मिलकर उसे एक विचित्र आकर्षण दे देते हैं। उसका पांच वर्ष का जीवन उसकी बुद्धि और उत्तर देने की कुशलता से मेल नहीं खाता। पर भविष्य में इस विशेषता को अपने विकास के लिए अपराध के अतिरिक्त और क्षेत्र मिलना कठिन होगा यह सोच कर हृदय व्यथा से भर आता है।

दरिद्रता ने साधारण कपड़ों को भी दुर्लभ पदार्थों की सूची में रख दिया है। मा कभी पुराने और कभी सस्ते मोटे कपड़े का लम्बा और बेडौल कुरता उल्टी सीधी खोपें भर कर सी देती है और उसे मैला न करने के सम्बन्ध में इतना उपदेश देती रहती है कि बालक कुरते को शरीर से अधिक मूल्यवान समझने लगा है। चाहे आंधी-पानी हो चाहे लू-धूप हो, वह सदा कुरते को उतार कर सुरक्षित स्थान में रखने के उपरान्त ही साथियों के साथ खेलता है। और जब खेल-कूद समाप्त होने पर बगल में कुरता दबाये हुए वह नंग-धड़ंग घर लौटता है तब उसे देख कर भ्रम होता है कि वह यमुना की काली मिट्टी से बना ऐसा पुतला है जो मंत्रबल से चलने लगा।

इन दोनों प्राणियों के अतिरिक्त उस घर में दो जीव और हैं—मुन्नू का पिता और बूढ़ा आजा।

मुन्नू का बाप मझोले कद, गेहुँये रंग और छरहरे शरीर का आदमी है। छोटे छोटे बाल उसके सिर पर खड़े ही रहते हैं। आंखों के चारों ओर स्याह घेरे और गालों पर झाई है जिसके साथ मुंहासे 'कोढ़ में खाज' की कहावत चरितार्थ करते हैं।

मुख की गठन में क्या विशेष बेडौल है यह बताना कठिन है, पर देखने में सब कुछ बेडौल लगता है। उसके मुख पर वह सौम्यता नहीं जो सुन्दर भावों की छाया है।

सबेरे उठकर वह टीले के एक ओर लगे पीपल के नीचे बैठता है और तम्बाकू पीने और तीतर चुगाने के काम साथ साथ करता है। फिर दस बजे अपनी अँधेरी कोठरी के जालों से ढके हुए आले में से सरसों के तेल की कुप्पी उठा लाता है और अपने शरीर की मालिश करता है। इसके उपरान्त यमुना में स्नान का प्रोग्राम भी कुछ कम लम्बा नहीं। लौटने पर जो चना-चबेना मिल सका उसे डाट फटकार का मूल्य देकर स्वीकार कर लेता है। फिर कभी पत्नी की खुशामद, कभी बूढ़े पिता की चिरौरी करके यदि कुछ पैसे पा सका तो उन्हें अंटी में छिपा कर अन्यथा विना पैसे ही जुआरी मित्रों की खोज में निकलता है।

उसका अधिक रात गए लौटना व्यवसाय में लाभ की सूचना है और सांझ होते ही घर पहुंचना हानि की घोषणा है। पहली स्थिति में वह भोजन की चिन्ता नहीं करता, परन्तु दूसरी में परम उपकारक की मुद्रा के साथ रूखा-सूखा खा कर टूटी खरहरी खटिया पर लेटते ही वह एक करवट में सवेरा कर देता है। काल-यापन का यह क्रम सनातन है। उसकी मा वचपन ही में कर्तव्य से मुक्ति पा चुकी थी पर वाप ने उसे हाथोहाथ रखकर पाला है इसका प्रमाण उसका हथई नाम है।

पिता के दुलार ने उसे वड़ा करने के साथ साथ उसकी दुर्बुद्धि को भी वड़ा कर दिया तो इसमें भाग्य का ही दोष समझना चाहिए।

अन्त में अपने कर्म-विपाक के अभिशाप को अकेले भोगना कायरता समझ कर वह एक सीधी, मेहनती और अनाथ वहू भी खोज लाया।

बूढ़ा ब्राह्मण-कुल-भूषण है और 'बांभन को धन केवल भिच्छा' में

विश्वास न रखनेवाले को कलिकाल का नास्तिक मानता है। वह सवेरे ही लोटा और एक फटा मैला अंगोछा लेकर संगम के सामने यमुना किनारे जा बैठता है और आने-जाने वाले पुण्य अहेरियों से अपनी करुण कथा कुछ हकलाते कण्ठ से, कुछ कांपते हाथों से और कुछ झुर्रियों के फ्रेम में जड़ी भाव-भंगिमा द्वारा कहता रहता है।

सुनने वालों को अपनी ही दयनीय कथा से फुर्सत नहीं, इसी से वे कथा न सुनकर उसका संक्षिप्त भावार्थ मात्र समझ लेते हैं। जैसे-तिथि-पर्वों में कथावाचक के कथा कह चुकने पर श्रोता, हाथ में रखे हुए अक्षत-फूल फेंक देता है वैसे ही वे, धर्म खरीदने के लिए लाए हुए सस्ते अन्न में से कभी एक मुट्ठी चावल , कभी चने, कभी जौ, बूढ़े के सामने बिछे हुए अंगोछे पर बिखेर कर राह नापते हैं। कोई साहसी पाई डाल जाता है, कोई जल्दबाज धोखे में पैसा फेंक कर चल देता है। इन सबकी भाग-दौड़ देखकर लगता है कि इन्हें ठीक संगम में, अतल गहराई की सीमारेखा पर, अनेक डुब-कियां लगाने पर भी पाप के डूब जाने का विश्वास नहीं। उल्टे वे विभ्रान्त भाव से जानते हैं कि वह उन्हीं के पीछे पीछे दौड़ता आ रहा है और रुकते ही फिर उनकी शिखा पर आसीन हुए बिना न रहेगा। बीच बीच में यह दान-लीला भी मानो उसी अजर अमर और निरन्तर संगी को दूसरी ओर बहका देने का प्रयास मात्र है। यह बहकाना भी 'लग जाय तो तीर नहीं तो तुक्का तो है ही'। किसे देते हैं, क्या देते हैं, किस प्रकार देते हैं, आदि आदि प्रश्नों को उठने का अवकाश न देने के लिए वे दृष्टि-संयम पर ध्यान को केन्द्रित करना चाहते हैं। माला के मनको में उलझी हुई उँगलियां और समझ में न आने वाले मन्त्रों के साथ व्यायाम करने वाले ओठ और रसना भी इसी लक्ष्य की पूर्ति करते हैं।

इस महान अभिनय का उपेक्षित पर प्रधान दर्शक बूढ़ा एक बजे कमाई

गँठिया कर अपने बिल जैसे घर में लौट आता है। भिक्षा में मिले हुए अन्न-सम्मिश्रण को कभी वह वैसे ही उबाल देती है और कभी चावल, दाल, चने, जौ आदि को बीन बीन कर अलग करने के उपरान्त दाल-भात जैसे दुर्लभ व्यंजन का प्रबन्ध करती है।

प्रायः यह अन्न इतने प्राणियों के लिए पर्याप्त नहीं होता इसी से मुन्नू की माई दूसरों के खेत, खलिहान, घर आदि में कुछ न कुछ काम करने चली जाती है। काम की मज़दूरी पैसों के रूप में न मिल कर अनाज के रूप में ही प्राप्त होती है और उसे लेकर जब सन्ध्या समय वह भारी पैरों और दुखते हुए हाथों के साथ घर लौटती है तब गृहिणी के कर्तव्य का भार सँभालना अनिवार्य हो उठता है।

पुराना घड़ा और किसी सुखस्मृति के अन्तिम चिह्न जैसी तांबे की चमकती हुई कलशी लेकर वह यमुना से पानी लाने जाती है। तब चूल्हे के ऊपर दीवाल में बने आले में से मिट्टी का दिया उठाती है और उसमें पड़ी हुई पुराने कपड़े की अधजली बत्ती का गुल झाड़ कर उसे, कहीं से मांग-जांच कर लाए हुए रेंडी के तेल से स्निग्ध कर जलाती है। फिर चूल्हा जलाया जाता है। पगडंडी और खेतों के आसपास पड़े हुए गोबर के कन्डे पाथ कर और इधर उधर से सूखी टहनियां बीन-बटोर कर यह ईंधन की समस्या सुलझाती रहती है।

बाजरा, ज्वार जैसा अनाज मिलने पर वह अदहन में दाल छोड़ कर, अँधेरे कोने में गड़ी हुई, घिसी घिसाई और बांस के हत्थे वाली चक्की चलाने बैठती है। बीच बीच में उठकर उसे कभी चूल्हे का ईंधन ठीक करना, कभी ससुर के लिए चिलम भरना, कभी मुन्नू को चबेना आदि देकर बहलाना पड़ता है। उसकी स्थिति में 'रोज़ कुआ खोदना, रोज पानी पीना' ही प्रधान है, इसी से उसकी गृहस्थी का रूप बनजारों की चलती फिरती

गृहस्थी के समान हो गया है। पर अपनी अनिश्चित आजीविका को भी वह अपनी कुशलता से कष्टकर नहीं बनने देती।

कभी सब कुछ मिल जाने पर घर में नमक नहीं निकला। बस वह मुन्नू को द्वार पर बैठाकर गांव के बनिये के यहां दौड़ गई। कभी कंडों के धुयें से दम घुटने लगा और वह आधी सेंकी हुई रोटी को जलने के भय से चूल्हे के एक ओर टिकाकर पास के खेत से सूखा रेंड या करवी ले आई। कभी ससुर खाते खाते मिर्च मांग बैठा और वह टूटीफूटी पर क्रम से रखी हुई मटकियों से भरे कोने में जा पहुँची। सारांश यह कि कब, क्या, कैसे आदि प्रश्नों पर वह कभी विचार नहीं करती, पर किसी प्रकार की भी आकस्मिकता के लिए प्रस्तुत रहना उसका स्वभाव है।

उसके परिश्रम ने उस घर के प्राणियों का भूखा सोना तो सम्भव ही नहीं रहने दिया उस पर उन सबको जब तब विशेष भोजन भी प्राप्त हो जाता है। कभी किसी पड़ोसी के यहां मट्ठा फेर कर एक लोटा मट्ठा ले आई और चना-मटर पीस कर कढ़ी का प्रबन्ध कर दिया। कभी किसी ईख के खेत में काम करके रस या औटते हुए रस के ऊपर से उतारा हुआ मैल ही मिल गया और उसमें मोटे लाल चावल डाल कर मीठा भात रांध लिया। कभी हाट में जाने वाली काछिन का कुछ बोझ ही वहां तक पहुँचा दिया और बदले में मिली हुई शाक-भाजी से दाल की एकरसता दूर कर दी। इस प्रकार उसके गृहप्रबन्ध में शतरंज की चालों में आवश्यक बुद्धि की आवश्यकता रहती है। एक स्थान में चूकने पर उसका परिणाम सारी व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर सकता है।

ससुर को वात, कफ़, का रोग घेरे रहता है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था स्वयं भी एक व्याधि है। वह तीस दिन में दस बारह दिन भिक्षाटन के कर्तव्य में असमर्थ रहता है। शेष दिनों में भी कभी कभी ऐसे कार्य आ पड़ते

हैं जो दूसरों की दृष्टि में निरर्थक होने पर भी उसके लिए परम महत्त्वपूर्ण हैं। कभी कोई पुराना मित्र खांसता खखारता हुआ, तम्बाकू का दम लगाने आ पहुँचता है तो जब तक अपनी ही नहीं, मँगनी की तम्बाकू भी समाप्त नहीं हो जाती तब तक उठने की चर्चा भी अशिष्टता की पराकाष्ठा समझी जाती है। कभी वृद्ध को किसी पुरातन सहयोगी की सुधि इस तरह व्याकुल कर देती है कि वह सिरहाने सँभाल कर धरी पर फटी हुई मिर्जई पहन कर, तम्बाकू और चुनौटी से भरे-पूरे बटुये को कमर में खोंसकर लठिया के सहारे गांव की ओर चल देता है। कभी उसे आसपास रहने वाला कोई भला आदमी श्रोता मिल जाता है तो उसे अपने अच्छे दिनों का इतिहास न सुनाना अपने सफेद बालों की निरर्थकता की घोषणा है। इस प्रकार के कर्तव्य असंख्य हैं और रहेंगे भी।

बहू ने जब से उसका आजीविका सम्बन्धी कार्य-भार बांट लिया है तब से वह और भी निश्चिन्तता के साथ टूटी खटिया पर लेट कर बहू को सेवापरायण होने का महत्त्व समझाता रहता है। 'अपनी करनी अपनी भरनी' पर अटल विश्वास होने के कारण वह लड़के को कुछ न कह कर बहू को सती और सुगृहिणी बनकर स्वर्ग-लोक में राजरानी होने का उपदेश देता रहता है।

बूढ़े के विचार में जीना दो दिन का है पर मरने की कोई सीमा नहीं। यदि दो दिन मिट्टी के बिल जैसे घर में रह कर, घिसी चक्की में चना जौ पीस कर और रेंड के धुयें से धुआई रोटी ससुर और उसके निठल्ले लड़के को खिलाकर, वह मरने के उपरांत स्वर्ग की रानी होने का अधिकार प्राप्त कर लेती है तो वही लाभ में रही। दो दिन का कष्ट और उसके बदले में अनन्त काल के लिए स्वर्ग-सुख! भला कौन भकुआ ऐसा होगा जो इस सौदे को सस्ता न समझे! संसार में असंख्य व्यक्तियों की पैनी दृष्टि इस परोक्ष सौदे

में छिपे सूक्ष्म लाभ को प्रत्यक्ष देख लेती है, इसीसे जान पड़ता है कि संसार में मूर्खों की संख्या बहुत कम है।

बूढ़े को अपनी बुद्धि पर भी कम गर्व नहीं। नालायक लड़के से लायक बहू का गठबन्धन कर उसने प्रमाणित कर दिया है कि वह बूढ़े विधाता के जोड़ का ही खिलाड़ी है, रत्ती-माशा भर भी बुद्धि में कम नहीं! यदि होता तो विधाता महाराज उसे बुढ़ौती में बलात् संन्यास-ग्रहण के लिए बाध्य कर डालते। अब यह केवल उसी की बुद्धि का प्रताप है कि वह उनके फैलाये जाल से निकल कर मुन्नू का आजा बन कर बहू के हाथ की ही नहीं उसके परिश्रम से अर्जित अन्न की रोटी खाता और खरहरी साढे तीन पाये की खटिया पर सगर्व आसीन होकर तम्बाखू पीता है।

जिस लड़के का पुरुषार्थ ऐसी परिश्रमी और सुशील वधू खरीद लाया है उसे नालायक मानना भी घोर अन्याय है। स्त्री की प्राप्ति और सन्तान की सृष्टि ही पुरुष की लियाकत का लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक पहुँच जाने वाला पुरुष और अधिक योग्यता का बोझ व्यर्थ ही क्यों ढोता फिरे! अतः शुद्ध उपयोगितावाद की दृष्टि से भी हथई का निष्कर्म जीवन व्यर्थ नहीं। उसके पिता ने अपनी बुद्धिमत्ता से अपने तथा पुत्र के जीवन की अच्छी व्यवस्था करके ब्रह्मा के अंक भी मिटा दिये हैं। अब वे अपना मृत्यु रूपी ब्रह्मास्त्र न चलावें तो वह पौत्र के जीवन की व्यवस्था भी कर सकता है और लायक पौत्र-वधू के हाथ की रोटी खाकर सगर्व स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर सकता है।

इस परम योग्य वृद्ध की वधू का जीवनवृत्त भी विचित्र है। उसने रीवा के आस पास के किसी गांव के एक निर्धन कथावाचक के घर जन्म लिया था। मां उसकी बचपन में ही दिवंगत हो गई, पर बाप ने सत्यनारायण की पोथी के साथ साथ उसे भी सँभाला। एक बगल में लाल कपड़े में लिपटी पोथी और

दूसरे में टूनी रंग की फरिया-ओढ़नी में सजी हुई वालिका को दवाये हुए वह दूर दूर के गांवों तक कथा वांचने के लिये चला जाता।

वालिका को कोने में प्रतिष्ठित कर वह शुद्ध-अशुद्ध संस्कृत शब्दों को ज़ोर ज़ोर से पढ़कर पांडित्य-प्रदर्शन करने बैठता, पर बीच बीच में सबकी आंख बचाकर नवग्रह पर चढ़े पैसों और कोने में अचल बैठकर ऊँघती हुई लड़की की ओर देखना नहीं भूलता। फटी और मैली पिछौरी में पँजीरी गँठिया कर और कुल्हड़ में पंचामृत लेकर वह कभी कभी रात होने पर घर लौट पाता।

प्रसाद यदि अधिक होता तो दोनों वहीं खाकर भोजन की झंझट से मुक्ति पाते, अन्यथा वालिका पँजीरी फांक कर और पंचामृत पीकर सो रहती और वाप भूखा ही लेट जाता।

निर्धन और मातृहीन वालिकाओं को वड़े होते देर नहीं लगती, क्योंकि आवश्यकता और स्वभाव दोनों मिलकर समय की कमी पूरी करके उन्हें असमय ही विशेप समझदार वना देते हैं। वूटा भी छः वर्प की अवस्था से ही छोटे-मोटे काम करने लगी थी, पर सातवें वर्ष से तो वह वाप की गृहस्थी ही सँभालने लगी।

वड़े लोटे में पानी ला लाकर वह छोटी कलशी भर देती, नीचे पड़ी हुई सूखी टहनियां और सूखा गोवर वीन लाती तथा गीला आटा सान कर जली रोटियां सेंक लेती।

इन सव कामों में उसे कप्ट नहीं होता था यह कहना मिथ्या होगा, पर वाप को सहायता पहुँचाने का सुख, दुख से गुरु ठहरता था। कभी नीची ऊँची टहनियां तोड़ने के प्रयास में घुटने छिल जाते, कभी पानी लाते समय ठोकर लगने से नाखून टूट जाते और कभी रोटी सेंकने में उँगलियां जल

जातीं। रोने की प्रवल इच्छा रोककर वह चुपके से चोट पर कड़आ तेल लगा लेती और जली उँगली पर गीला आटा लपेट कर ठंढक पहुँचाती।

वाप तो मानो सातवें आसमान पर पहुँच गया था। उसकी वुटिया घर-गृहस्थी सँभालने योग्य हो गई इससे वढ़कर गर्व की वात और हो भी क्या सकती थी! जव वह कथा वांचने जाता तव उसके लम्वे लम्वे डगों से पीछे न रहने के लिए अपने नन्हें पैरों को जल्दी जल्दी धरती हुई वुटिया वाप का साथ देती। श्रोता के घर में पहुंच कर वह कथा के लिए आवश्यक वस्तुयें ला ला कर पिता के सामने रखती और जव तक कथा समाप्त न होती कोने में अचल मूर्ति की तरह वैठी रहती। अव वह पहले के समान ऊँघती नहीं वरन् पिता के अगाध पाण्डित्य पर पुलकित और विस्मित होती हुई वड़े मनोयोग से कथा सुनती और कौन-सा पात्र वन जाना उसके लिए अच्छा होगा इसकी विवेचना करती रहती।

लौटते समय वाप सत्यनारायण की कथा की पोथी और पंचामृत का पात्र थामता और वेटी पिछौरी में वँधे नारियल, सुपारी, पँजीरी आदि की गठरी सिर पर रख लेती। मार्ग में वह लीलावती, कलावती के सम्वन्ध में इतने प्रश्न करती हुई चलती कि कथावाचक वेटी की वुद्धि पर विस्मित हुए विना न रहता। पर इस विस्मय के वीच वीच में खेद की एक छाया भी झांक जाती थी। यदि वुटिया पुत्र होती तो वह उसे संसार में सवसे श्रेष्ठ कथावाचक वना देता, पर वेटी के रूप में तो वह पराई धरोहर है। अच्छे घर पहुँच जाय यही वड़ा भाग्य है।

पराई धरोहर लौटाने से पहले ही कथावाचक के लिए ऐसा वुलावा आ पहुँचा जिसे अस्वीकार करने की क्षमता किसी में नहीं है। जव वह ज्वर से पीड़ित था तभी उसका एक ऐसा गुरुभाई आ पहुंचा जिसका परिचय, गोस्वामी जी के शब्दों में 'नारि मुई गृह सम्पति नासी, मूंड़ मुड़ाय भये

संन्यासी' ही हो सकता था। अन्य सम्बन्धियों के अभाव में इसी भ्रमणशील गुरुभाई को कन्या का भार सौंप कर कथावाचक किसी अन्य लोक में जीवन-कथा सुनाने के लिए चल दिया।

नौ वर्ष की बूटा समझदार होने पर भी मृत्यु-जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जानती थीं। घर में कोई और रोने पीटनेवाला न होने के कारण उसने पिता की महानिद्रा को साधारण नींद ही समझा, इसी से उसे खेलने के लिए दूसरे घर भेज देना सहज हो गया। लौटने पर सूना घर देखकर उसने जब रोना-धोना आरम्भ किया तब नये काका का आश्वासन-भरा कण्ठ भी उसे चुप न कर सका। उसका पिता डोली में बैठकर वैद्य के पास गया है, इस कथन पर उसे विश्वास भी था और सन्देह भी। कई गांवों के अन्तर पर पिता के परिचित एक वैद्य रहते थे, इसी से यह कहानी कुछ असम्भव नहीं लगती थी, पर उसका पिता उसे छोड़कर कभी कहीं गया नहीं, यह विचार इस आकस्मिक गमन को सन्दिग्ध बना देता था।

अन्त में वह सब कुछ जान ही गई और अपने एकाकी जीवन के एकमात्र संगी पिता के लिए अच्छी तरह रोकर उसने नये काका की सेवा का भार सँभाला। वह स्वभाव से इतना कठोर और व्यवहार में इतना सहानुभूति शून्य था कि उससे पिता का अभाव भर लेना सम्भव ही नहीं हो सका, पर समझदार बूटा ने अपने व्यवहार से यह नहीं प्रकट होने दिया।

भ्रमण-प्रेमी नये काका ने जब पुराना कच्चा घर बेचकर दूर देश चलने का प्रस्ताव किया तब बालिका ने बड़े कष्ट से आंसू पीकर अपनी सम्मति प्रकट की। पिता की स्मृति से बसे हुए घर में उसे कभी नहीं जान पड़ा कि वह अकेली है। सदा के समान वह पिता की शालग्राम की बटिया को स्नान कराके डिबिया में रख देती थी, सत्यनारायण की पोथी को नित्य

आंचल से झाड़पोंछ कर और चिरपरिचित लाल दुरजनी में वांधकर खूंटी पर लटका देती थी और उसके वैठने के स्थान को गोवर से लीपने के उपरान्त कुश का आसन विछाकर पिता के वैठे रहने की कल्पना करती थी।

पर अन्तिम समय में पिता वुटिया को सौंप कर जिस पर अपने अटूट विश्वास का प्रमाण दे गया था, उसकी इच्छा के विरुद्ध चलना पिता का अपमान था। इसी से एक दिन पुरानी ओढ़नी में पिता का पोथी पत्रा, अपने वचपन के खिलौने और दो एक वर्तन वांध कर वह नये काका के साथ साथ पैर वढ़ाती हुई परिचित गांव पीछे छोड़ आई।

उसका घर किसी महाजन ने ख़रीद लिया था, पर कितना रुपया मिला और उसका क्या उपयोग हुआ यह नया काका ही जानता था।

वनजारे के जीवन जैसे जीवन में उसने क्या नहीं देखा यही प्रश्न सम्भव है, क्या क्या देखा यह पूछना वेकार होगा क्योंकि उसके देखने की सीमा वहुत विस्तृत है।

इसी भ्रमण-क्रम में वह माघमेले के अवसर पर प्रयाग पहुँचा और नाव में वैठकर अरैल के घाट पर उतरा। लोग कहते हैं कि वह वालिका को वेचने की इच्छा से आया था। पर इस कथन में विशुद्ध सत्य का अंश कितना है और अनुमान की मिलावट कितनी, यह वताना कठिन है। मेले के दिनों में घाट पर दो पैसा फ़ी आदमी के हिसाव से टैक्स लगता है। काका के पास पैसे नहीं निकले इसी से वह इधर उधर करने लगा। सम्भवत: उसकी घवराहट और उसके पीछे अनिच्छा से आने वाली वालिका की सभीत मुद्रा देखकर घाटवाला सिपाही पूछ वैठा—इसे कहां से उठा लाया है? अव इसे चोर की दाढ़ी में तिनका कहा जाय चाहे कुछ और पर यह सत्य है कि काका वूटा को वहीं छोड़कर दूकान में रुपया भँजाने जो गया सो आज तक नहीं लौटा।

अभागी बालिका प्रतीक्षा करते करते थक कर अपनी गठरी पर सिर रखकर आर्त क्रन्दन करने लगी। तब तो घाटवालों को विशेष चिन्ता हुई। क़ायदे क़ानून के घेरे में पचासों चक्कर लगाकर जब उन्होंने अपने कर्तव्य का भार उतारने के लिए एक ब्राह्मण परिवार खोज लिया तब से उस बालिका की खोज खबर लेने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ी।

इस नये घर में अपने पिता का पोथी-पत्रा आले में रख कर और शालग्राम को ब्राह्मण के ठाकुर जी की सभा का सदस्य बनाकर उसने फिर सेवा-व्रत सँभाला।

बूढ़े ब्राह्मण की बेटियां ससुराल में थीं और पुत्र तथा पुत्रवधू बड़े-बूढ़े का पद-ग्रहण करने के लिए आवश्यक, विशेष योग्यता की परीक्षा दे रहे थे। इस अनाथ बालिका के आ जाने से उन सभी को एक निष्काम सेवक की प्राप्ति हो गई। वह निरीह भाव से घर के सभी काम अपने ऊपर ले रही थी। वृद्ध के पंचपात्र और आचमनी साफ़ करने से लेकर उनकी खड़ाऊँ धोने तक का काम वह करती थी। ब्राह्मणी की पीठ मलने से लेकर उसकी खटिया कसने तक का अधिकार उसी को था। बहू के जुयें देखने से लेकर उसका सलूका सीने तक का विज्ञान वह समझती थी। लड़के की चिलम भरने से लेकर उसके चमरौधे जूते में तेल लगाना तक उसके कर्तव्य के अन्तर्गत था। उसका स्वभाव सोना था, इसी से वह दुख की आंच में और अधिक निखर आया; राख और कोयला नहीं बन गया।

इसी बीच में ह्यई के बाप ने इस सलज्ज, परिश्रमी और मितभाषिणी बालिका को देखा और अज्ञात कुलशील होने पर भी उसे पुत्रवधू बनाने का प्रस्ताव कर बैठा।

ससुराल में हाड़-चाम के इन दो पुतलों के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं था, इसी ने एक चुनरी और कुछ कच्ची चूड़ियों के चढ़ावे पर ही वधू को

सन्तोष कर लेना पड़ा। ब्राह्मणी का न जाने कब का रखा हुआ पुराना छींट का लहँगा ही उस चुनरी का पूरक बना।

इस तरह के नये पुराने परिधान में सज्जित, कच्ची काच की चूड़ियों से अलंकृत और सिन्दूर की एक अंगुल मोटी मांग से प्रसाधित वधू, पन्नी और हरे कागज़ की मौरी का मुकुट लगाकर ससुर के अँधेरे कच्चे घर के द्वार पर आ खड़ी हुई। टूटी मटकियों से सम्पन्न और मकड़ी, चूहे, छिपकली आदि से जनाकीर्ण घर में उसके स्वागत के लिए भी कोई नहीं था।

पास-पड़ोस की स्त्रियों ने परिछन करके उसे फटी चटाई पर प्रतिष्ठित कर दिया और वधू-धर्म की विविध व्याख्यायें सुनाकर वे अपने अपने साम्राज्य में लौट गई।

उसकी धर्म माता, पकवान से भरी लाड़पिटारी साथ रखना नहीं भूली थी। उसे तो भूख ही नहीं थी पर उन बेटों ने विवाह का प्रीतिभोज उसी से सम्पन्न किया।

थका हुआ हृथई टिमटिमाते हुए दीपक के सामने कम्पित अन्धकार भरे कोने में लेटकर खर्राटे भरने लगा और वहीं पैताने सिकुड़ कर बूटा ने भी सवेरा कर दिया।

हृथई तो उठते ही मित्रों की खोज में चला गया और वृद्ध ने यमुना मैया की ओर जाते जाते खांस खासकर वधू से कहा 'दुल्हिनिया आपन घर सँभार ले, हम तौ जाइत है।' दुल्हिन ने घर को ऊपर से नीचे तक देखकर झाड़ू सँभाली और मकड़ी, झींगुर आदि पर जिहाद बोल दिया। वृद्ध जब तक कुछ चावल दाल लेकर लौटा तब तक वधू घर लीप पोतकर यमुना नहा आई थी। बहू ने बिना ढक्कन वाली बटलोई में खिचड़ी चढ़ाकर उसे फूटी थाली से ढाक दिया और ससुर देहली पर बैठकर उसे अपने अच्छे दिनों की

कहानी सुनानें लगा। तब तक एक दोने में गुड़ में पगे सेव लेकर सीटी बजाता हुआ हथई भी लौट आया।

कई टूटी फूटी मटकियों में हाथ डाल डालकर बधू ने अमचुर का पता लगाया और नमक मिर्च के साथ उसे पीसकर चटनी प्रस्तुत की। गृहिणी की गम्भीरता को बधू के घूंघट में सीमित कर उसने फटी चटाई का आसन बिछा और कई जगह टेढ़े लोटे में यमुना-जल भर कर, बाहर तम्बाकू पीते हुए ससुर को कुण्डी खनका कर बुलाया। पकवान और गुड़ के सेव दोने में रखकर और फूटी थाली में खिचड़ी परोस कर जब वह उन दोनों को खिलाने बैठी तब उसके हृदय में एक अज्ञातनामा ममता उमड़ आई। 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' का जितना सजीव उदाहरण वह घर और उसके निवासी थे उतना अन्यत्र मिलना कठिन होगा।

इसी घर में उन दोनों विचित्र आत्माओं की चिन्ता करते करते वह तेरह वर्ष की बालिका से तेईस वर्ष की युवती हो गई है, नववधू से माता बन गई है। उसकी चिन्ता का विस्तार, बढ़ते बढ़ते अब सीमा तक पहुँच चुका है, पर स्वयं उसकी चिन्ता करने का प्रश्न अभी तक किसी के मन में नहीं उठा।

वहीं खँडहर मे संयोग से मेरा उससे परिचय हो गया और वह परिचय दिन प्रतिदिन और अधिक गहरा होता गया। पहले पहले मैंने मुन्नू और मुन्नू की माई को प्रदर्शनी दिखाने के लिए बुला भेजा। सज्जी से साफ़ की हुई पुरानी धोती में सजी हुई मा और नग्नता का दोष मिटाने के लिए दादा का फटा अंगौछा पहने हुए बेटा दोनों जब मेरे बड़े कमरे के सामने पहुँचे तो उन्होंने उसी को नुमाइश समझ कर मूर्त्तियों को दंडवत प्रणाम करना आरम्भ किया। सन्ध्या समय जब वे भक्तिन के संरक्षण में प्रदर्शनी देखने पहुँचे तब तो उस सौन्दर्य की हाट में बेहोश होते होते बचे।

तब से मुन्नू की माई 'हम नी आज नैहरे जाब' कहकर प्राय: यहां

चली आती है। मेरा घर उसका एकमात्र नैहर है, यह सोचकर मन व्यथित होने लगता है।

अन्न का संकट आरम्भ होते ही आजीविका का प्रश्न और अधिक उग्र हो उठा। हुयई को बहुत कह सुनकर किले में काम करने भेजा, पर वह वहां टिक न सका। एक तो उसके स्वभाव और काम में छत्तीस का सम्बन्ध है, दूसरे अपने कमाये हुए पैसों का वह एक ही उपयोग जानता है।

अन्त में बहुत संकोच के साथ मुन्नू की माई ने स्कूल में कोई काम देने की बात कही। उन्हें जीवन भर अपने पास रखकर मुझे प्रसन्नता होगी, यह बार बार कहने पर भी मुन्नू की माई बिना काम के यहां आने के लिए राजी नहीं हुई। तब निरुपाय होकर मैंने उसके लिए कम परिश्रम का काम खोज दिया। पर विश्राम तो उसके लिए अपराध जैसा था। वह नित्य बैलगाड़ी में बैठकर जाती और लड़कियों को घर के भीतर से बुलाकर गाड़ी पर ही लौट आती। शेष समय में वह किसी गाड़ीवान की मिर्जई सीती, किसी दाई की कथरी बनाती और कोई काम न रहने पर मेरे घर के कोने कोने की सफ़ाई में लगी रहती। मुन्नू खाकर और नया कुरता-पैजामा पहनकर कभी आ ई लिखता, कभी कुत्ते-बिल्ली से खेलता और कभी मेरे आफ़िस के दरवाजे पर बैठा रहता।

रात को दोनों मां-बेटे ज़मीन पर दरी बिछाकर मेरे तख्त के पास ही सो रहते। बहुत कहने सुनने पर भी मुन्नू की माई ने धरती पर सोने का अभ्यास छोड़ना नहीं स्वीकार किया।

मैंने सोचा था कि उसके परिश्रम के दिन बीत गए, पर यह अनुमान सत्य नहीं हो सका। एक दिन भौंहों तक घूंघट खींच संकोच के साथ मुन्नू की माई ने कहा कि वह अरैल जाना चाहती है। बूढ़ा दो दो दिन खाना नहीं खाता, उसका बेटा कई कई दिन ग़ायब रहता है। आठ दस दिन में एक

दिन के लिए घर आना पर्याप्त नहीं; क्योंकि उसके न रहने से वहां की व्यवस्था चल ही नहीं सकती। उसके कथन में सत्य का मैंने अनुभव किया और उसे भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

इस बार मैं अधिक समय तक अरैल जाने की सुविधा न पा सकी, जब गई तब माघमेले की तैयारियां हो रही थीं। गुनू की माई को घर में न देखकर मैं ने पूछतांछ की। पता चला वह संगम के उस पार मज़दूरी के लिए जाती है। वहां माघमेले के लिए जमीन बराबर की जा रही है और बहुत से व्यक्ति काम में लगे हैं। वह भी टोकरी भर भर के मिट्टी ढोती है। बीच में एक घंटे के लिए छुट्टी मिलती है अवश्य, पर वह आवे कैसे! नाववाला इस पार पहुँचाने के लिए दो पैसे लेता है। सवेरे सांझ आने जाने में ही एक आना खर्च हो जाता है। बीच में आने-जाने से और एक आना देना पड़ेगा। इसीसे वह भूखी प्यासी सवेरे से सांझ तक धूप में मिट्टी ढोती है और शाम को मिली मजदूरी से आटा-दाल खरीद कर दिया जले लौटती है। बांभनी ठहरी—रोटी बांधे बांधे तो फिर नहीं सकती। मल्लाह, मजदूर आदि के बीच में छुआछूत से बच जाना कठिन ही है।

वह ब्राह्मण होकर मिट्टी ढोये यह न उसके सजातीयों को पसन्द था न घरवालों को, पर इस सम्बन्ध में उसने कोई तर्क नहीं सुना। उसकी भूख प्यास का सम्बन्ध केवल उससे है, इसीसे उसने न रोटी ले जाने का हठ किया और न बीच में घर आने की फिजूलखर्ची स्वीकार की। पर उसके परिश्रम के परिणाम पर अनेक व्यक्तियों का जीवन निर्भर है, अतः इस सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार वह दूसरे को सौंप नहीं सकती। परिश्रम के तप में पली यह नारी यदि भिक्षाजीवी ब्राह्मणत्व से मिट्टी ढोने को अच्छा समझती है तो यह उसकी व्यक्तिगत विवशता है। किन्तु लीक लीक चलनेवाला समाज यदि ऐसे ववंडरों को निरंकुश बहने दे तो उसकी

एक लीक भी न बच सके। इसीसे मजदूरिन ब्राह्मण-वधू ब्रह्मतेज-सम्पन्न भिक्षुक-समाज की आंख की किरकिरी है।

सन्ध्या समय लटों से लेकर पांव के नखों तक धूल-धूसरित मुन्नू की माई घर लौटी, दिया जलाकर पानी भरने गई और अदहन में दाल छोड़ने के उपरान्त मुझे नमस्कार करने आई।

इस व्यवस्था से मुन्नू बेचारा बड़े कष्ट में पड़ गया था, क्योंकि उसे धूल-मिट्टी से बचाने और खाने पीने की सुविधा देने के लिए, मां घर ही छोड़ जाती थी। रोटी कभी वह रात ही को बनाकर रख देती और कभी पांच बजे सवेरे। बाबा या पिता के साथ खाने पीने का कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर वह दिन भर क्या करे यह समस्या सुलझाना कठिन था।

कभी वह बाबा के साथ यमुना किनारे चला जाता, कभी निठल्ले बालकों में खेलता और कभी अपने पीपल के नीचे बैठ कर, आंखें मिचमिचाता हुआ पार की भीड़ में अपनी मां को पहचानने का निष्फल प्रयत्न करता। जब इस पार के बड़े बड़े आदमी भी उस पार पहुँचकर कीड़ों की तरह रेंगने लगते हैं तब उसकी दुबली पतली और सबसे नाटी मां का क्या हाल हुआ होगा, यह विचार उसके नन्हें हृदय को मथ डालता। सन्तोष इतना ही था कि इस पार पहुँचते पहुँचते उसकी मां वही मुस्कराती हुई मां बन जाती थी। वे सब पार जाकर इतने छोटे क्यों हो जाते हैं, इस प्रश्न को, वह सबसे दीर्घकाय ठाकुर दादा से लेकर सब से छोटे नन्हकू तक से पूछ चुका था, पर किसी ने भी उसकी जिज्ञासा का महत्त्व नहीं समझा।

जब कभी मैं अरैल पहुँच जाती थी तब उसका सारा समय मेरे पास ही बीतता था, इसीसे उस एकाकी बालक के स्वभाव की विशेषता मुझसे छिपी न रह सकी।

बालक मेधावी है। उसका प्रत्येक वस्तु को देखने का और उसके

सम्बन्ध में मत देने का ढंग अन्य बालकों से भिन्न है। एक बार रात के समय यमुना के पुल पर से रेल को जाते देख वह पुकार उठा 'गुरु जी, गुरु जी, दीवारी भगी जात है' तब मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। विशेष पूछने पर उसने बड़े जानकार के समान सिर हिला कर कहा 'उहै रेलिया बाटै गुरु जी! अँधियारे मां दिया बारे भागी जात है'! रात के अन्धकार में पुल पार करने वाली ट्रेन का बाह्याकार अँधेरे में मिल जाता है और वह भागते हुए दीपकों की पांति जैसी दिखाई देती है यह सत्य है, पर इस कवित्वमय सत्य को मुन्नू के मुख से सुन कर किसे आश्चर्य न होगा!

संगीत से भी उसे विशेष प्रेम है। जहां तहां सुने हुए भजन वह कंठस्थ ही नहीं कर लेता वरन् उसी राग के अनुसार गाने का प्रयत्न भी करता है। संकोच के मारे मेरे सामने वह अपनी समस्त विद्या प्रकट नहीं कर पाता। बार बार आरम्भ करके और बार बार रुक कर जब वह पराजय की स्वीकारोक्ति के समान कहता है 'का जाने काहे गुरु जी के सामने तौ सब बिसर जात है' तब हँसी रोकना कठिन हो जाता है।

इन बालकों को निरुद्देश्य धूप में भटकते और स्त्रियों को अकारण लड़ते देखकर ही मेरे मन में एक ऐसी पाठशाला खोलने की इच्छा उत्पन्न हुई जिसमें स्त्रियां अवकाश के समय कातना बुनना सीख सकें, बच्चे पढ़ सकें और बूढ़े समाचारपत्र सुन सकें। वैसे अरैल में इस प्रकार की पाठशाला के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है, परन्तु मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न विचार कार्य में अपनी अभिव्यक्ति अनिवार्य कर देता है।

थोड़े ही दिन में जब चरखे, करघे, पुस्तकें आदि आवश्यक उपकरण एकत्र हो गए तब वहां नियमित रूप से रह सकने वाली शिक्षक की खोज हुई, क्योंकि मैं तो सप्ताह में एक-दो दिन ही वहां रह सकती थी। पर यह समस्या भी सुलझ गई।

भक्तिन जब बुढ़ापे के कारण कुछ शिथिल होने लगी तब मैंने उसका असिस्टेंट बनाकर अनुरूप को रख लिया था। उस अहीर-किशोर का अक्षर-ज्ञान और पढ़ने की इच्छा देखकर उसे पढ़ाना भी आवश्यक हो गया। जब वह सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा तक पहुँच चुका तब उसे भक्तिन की सहायता से अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य सौंपना उचित जान पड़ा, इसी से उसको पढ़ाने की शिक्षा देकर अपनी विचित्र पाठशाला में रखने का प्रबन्ध किया। कताई बुनाई जानने वाली एक वृद्धा भी वहां रहने को प्रस्तुत हो गई।

परन्तु करघा, चरखे आदि मेरी बिना-दरवाजे की चौपाल में रखे नहीं जा सकते थे। बस्ती में सब के घर ऐसे थे जो उनके परिवार के लिए ही छोटे लगते थे। नये घर और ज़मीन का प्रबन्ध, मेरी शक्ति से बाहर था।

तब मुझे वह सूना पड़ा हुआ पक्का घर याद आया जिसका पिछला खण्ड कच्चा होने के कारण हर बरसात में ढहता रहता है। गृहस्वामी के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ कि वे बाईस वर्ष से उस ओर आने का अवकाश नहीं निकाल सके। माघ के महीने में दो-चार दिन के लिए जब उनके यहां से दो-चार व्यक्ति आ जाते हैं तब जालों से ढके झरोखों से निकलता हुआ कंडों का धुआं उस परित्यक्त खँड़हर का दीर्घ निश्वास जैसा दिखाई देता है। शेष समय में वह प्रेत जैसी निस्पन्द और भीषण रहस्यमयता लिए हुए खड़ा रहता है। जिन पंडा महोदय के पास इस शून्य की कुञ्जी थी वे बेचारे भी मेरे प्रस्ताव पर उत्फुल्ल हो उठे और धूल में खेलने वाले भावी विद्यार्थी भी उसकी कठिन दीवारों से चिपक चिपक कर उसे अपना कहने लगे। जब पंडा जी से पता चला कि इस रहस्यमय घर के स्वामी नई गढ़ी के ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी हैं तब सफ़ाई के लिए मजदूर लगाकर मैंने उन्हें इस सम्बन्ध में लिखा।

उनकी स्वीकृति के सम्बन्ध में मेरे मन में कोई दुविधा नहीं थी, इसी से

जब उनकी दृष्टि में मेरे उपयोगितावाद का विशेष महत्त्व नहीं ठहरा तब मुझे विस्मय से अधिक ग्लानि हुई।

आज तो मेरा लोक-ज्ञान बहुत विस्तार पा चुका है। बड़े कलाकार की तो बात ही क्या जो एक तुक भी मिला सकता है या एक छोटी घटना की कल्पना भी कर सकता है उससे मैं उपयोगिता की चर्चा नहीं करती। कलाकार यदि मेरी तरह घूरों को लीपता घूमे तो वह अमर होने का उद्योग कब करे!

अन्त में मैंने चरखे एक गांव में भेज दिये, करघा दूसरे को दे डाला, वृद्धा को दूसरा काम खोज दिया और अनुरूप को साक्षरता के प्रसार में शिक्षक बनाकर अपना वचन पूरा किया।

अब भी मैं अरैल जाती हूँ और चौपाल में बैठ कर मुन्नू का गीत और उसकी माई की कथा सुनती हूँ। वह पक्की इमारत गर्व से सिर उठाये अधिकार की शून्यता की घोषणा करती है और उसका कच्चा खँडहर विरक्त भाव से सुनता रहता है।

उसके किसी कोने से बाहर आकर कोई बालक कह देता है 'बहुत दिनन मां दिखान्यूं माई जी' और कोई पूछ बैठता है 'हमार इस्कुलिया कब खुली माई?' उत्तर में मेरा सारा आक्रोश पुकार उठना चाहता है 'अरे अभागो! तुम्हारा गांव जरायमपेशा है, तुम्हारे बाप-दादा ने अपना जीवन नष्ट करके इसके लिए यह ख्याति कमाई है। तुम जुआ खेलो, चोरी सीखो पर भले आदमियों के अधिकार में हस्तक्षेप करने का दुस्साहस न करो' पर धूलभरी बरुनियों से घिरी और मलिन पलकों में जड़ी हुई उन तरल आंखों की चकित सभीत दृष्टि मेरा कण्ठ रूंध देती है। तब मैं बिना किसी ओर देखे नाव की ओर पैर बढ़ाती हूँ।

पांच

रज्जुरी का लिकास (handwritten)

भक्तिन को जब मैंने अपने कल्पवास सम्बन्धी निश्चय की सूचना दी तब उसे विश्वास ही न हो सका। प्रतिदिन किस तरह पढ़ने आऊँगी, कैसे लौटूंगी, तांगेवाला क्या लेगा, मल्लाह कितना मांगेगा आदि आदि प्रश्नों की झड़ी लगा कर उसने मेरी अदूरदर्शिता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया।

मेरे संकल्प के विरुद्ध बोलना उसे और अधिक दृढ़ कर देना है इसे भक्तिन जान चुकी है पर जीभ पर उसका वश नहीं। इसीसे अपने प्रश्नों की अजस्र वर्षा में भी मुझे अविचलित देखकर वह मुंह बिचका कर कह उठी, 'कलपवास की उमिर आई तब उहौ हुइ जाई। का एकै दिन सब नेम धरम समापत करै की परतिग्या है?'

यह सब, मैं नियम धर्म के लिए नहीं करती यह भक्तिन को समझाना कठिन है, इसीसे मैं उसे समझाने का निष्फल प्रयत्न करने की अपेक्षा मौन रहकर उसकी भ्रान्ति को स्वीकृति दे देती हूँ। मौन मेरी पराजय का चिन्ह नहीं प्रत्युत् वह जय की सूचना है यह भक्तिन से छिपा नहीं, सम्भवतः इसी

तिल धरै का ठिकाना नाहिन वा। अव दिया-वाती की विरिया कहां जाई—कसत करी!"

वृद्ध के कण्ठस्वर और उसके कथन की आत्मीयता ने मुझे वलात् आकर्षित कर लिया। भक्तिन की दृष्टि में अस्वीकार के अक्षर पढ़कर भी मैंने उसे अनदेखा करते हुए कहा—'आप यहीं ठहरें वावा! मेरे लिए तो यह कोठरी ही काफ़ी है। न होगा तो भक्तिन खाना वाहर वना लिया करेगी। इतना वड़ा वरामदा है, आप सव आ जायंगे। रैनवसेरा तो है ही।

फिर जव मैं अपनी पुस्तकें और शीतलपाटी लेकर भीतर आ गई तथा दिया जलाकर पढ़ने वैठी तव वे अपने अपने रहने की व्यवस्था करने लगे।

भक्तिन मेरे आराम की चिन्ता के कारण ही दूसरों से झगड़ती है। पर जव उसे विश्वास हो जाता है कि अमुक व्यक्ति या कार्य से मुझे कष्ट पहुँचना सम्भव नहीं तव उसकी सारी प्रतिकूलता न जाने कहां ग़ायव हो जाती है। भीड़ से मेरी शान्ति भंग हो सकती है, इस सम्भावना ने उसे जो कठोरता दी थी वह उस सम्भावना के साथ ही विलीन हो गई। वह सत्तू रखने के सींके के नीचे ईंट-पत्थर का चूल्हा वनाकर कम से कम स्थान घेरने की चेष्टा करने लगी जिससे उन आक्रमणकारियों को सुख से वस जाने का अवकास मिल सके।

उस रात तो मुझे उस नये संसार की व्यवस्था देखने का अवसर न प्राप्त हो सका। दूसरे दिन संक्रांति की छुट्टी थी। मुझमें इतनी आधुनिकता नहीं कि स्नान न करूँ और इतनी पुरातनता भी नहीं कि भीड़ के धक्कमधक्के में स्नान का पुण्य लूटने जाऊँ। सो मैं मुंह अँधेरे ही भक्तिन को जगाकर कोहरे के भारी आवरण के नीचे करवट वदल वदल कर अपने अस्तित्व का पता देने वाली गंगा की ओर चली।

जव लौटी तव कोहरे पर सुनहली किरणें ऐसी लग रही थीं जैसे सफ़ेद आवेरवां की चादर पर सोने के तारों की हल्की जाली टाँक दी गई हो।

समुद्रकूप की सीढ़ियों के दक्षिण ओर बनी हुई मेरी बड़ी, पर कोलाहल शून्य पर्णकुटी आज पहचानी ही नहीं जाती थी। उसके नीचे बसी हुई, अस्थिर सृष्टि को देखकर जान पड़ता था कि किसी प्रशान्त साधक के—किसी असावधान श्वास के साथ इच्छाओं की चंचल भीड़ उसके निरीह हृदय के भीतर घुस पड़ी हो। निकट पहुँच कर मैंने अपनी कुटी की शान्तिभंग करने वालों का अच्छा निरीक्षण किया।

वृद्ध महोदय ने सेनानी के उपयुक्त आडम्बर के साथ मेरे पढ़ने के बरामदे में अधिकार जमा लिया था। फटी और अनिश्चित रंगवाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास ही रखी हुई एक मैले फटे कपड़े की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहने, नारियल का काला हुक्का बांस के खम्भे से टिका हुआ था। टूल की गोटवाला काला सुरती का बटुआ दीवार से लटक रहा था। खम्भे और दीवार से बँधी डोरी की अरगनी पर एक धोती और रुई भरी काली मिरजई स्वामी के गौरव की घोषणा कर रही थी। निरन्तर तैलस्नान से स्निग्ध लाठी का गांठगँठीलापन भी चिकना जान पड़ता था। पैताने की ओर यत्न से रखी हुई काठ और निवाड़ से बनी खटपटी कह रही थी कि जूते के अछूतपन और खड़ाऊँ की ग्रामीणता के बीच से मध्यमार्ग निकालने के लिए ही स्वामी ने उसे स्वीकार किया है।

सारांश यह कि मेरे पुस्तकों के समारोह को लज्जित करने के लिए ही मानो बूढ़े बाबा ने इतना आडम्बर फैला रखा था। वे सम्भवत: दतौन के लिए नीम की खोज में गए हुए थे, इसी से मैंने भेदिये के समान तीव्र दृष्टि से उनकी शक्ति के साधनों की नाप-जोख कर ली।

बरामदे की दूसरी ओर का जमघट कुछ विचित्र-सा था। एक सूरदास समाधिस्थ जैसे बैठे थे। उनके मुख के चेचक के दाग, दृष्टि के जाने के मार्ग

की ओर संकेत करते जान पड़ते थे। श्याम और दुर्बल शरीर में कण्ठ की उभरी नसों का तनाव बताता था कि वे अपनी विकलांगता का बदला कण्ठ से चुका लेना चाहते हैं। सिरकी की टट्टी बांधते समय बांस का एक कोना कुछ बढ़कर-खूंटी जैसा बन गया था। इसी से एक चिकारा और एक जोड़ मंजीरा लटक रहा था। सामान में एक चादर, टाट और ऐसी लुटिया भर थी जिसके किनारे घिसते-घिसते टेढ़े-मेढ़े और पैने हो गए थे।

टाट की सीमा से बाहर वीरासन से विराजमान और तिलक-छाप से पांडित्य की घोषणा करते हुए एक प्रौढ़ एक रंगीन पिटारी खोले हुए थे। रूप-रंग में वह पिटारी शालग्राम या शंकर का बन्दीगृह जान पड़ती थी और सम्भवत: देवता का भार हल्का करने के लिए ही वे उन पर लदे चन्दन घिसने के पत्थर और चन्दन की अवघिसी मुठिया बाहर निकाल रहे थे। रामनामी चादर के एक टुकड़े पर जो पोथी-पत्रा धरा था उसमें सबसे ऊपर हनुमान चालीसा का शोभित होना प्रकट कर रहा था कि उनके देवत्व को नित्य भूत प्रेतों की आसुरी माया से लोहा लेना पड़ जाता है।

टाट का एक खूंट दबाकर ठंढी बालू में बैठने का कष्ट भूलने का प्रयत्न करते हुए दो किशोर बालक, अनेक छेदों से चित्रित एक काली कमली में सिकुड़े बैठे थे। उनमें एक की दृष्टि, छप्पर से लटकती हुई सम्भवत: सत्तू गुड़ जैसे मिष्टान्नों की गठरी को हिप्नोटाइज़ कर रही थी और दूसरा चकित के समान पंडित के क्रियाकलाप का तत्व समझने में लगा हुआ था।

एक और अधेड़ बाहर बैठकर धूप ले रहा था। एक पुरानी और झीनी चादर ने उसके दुबले शरीर के ढांचे को छिपा रखा था, पर नोकदार कंधों का आभास और उभरी नसों वाले सूखे हाथ सच्ची कथा कह देते थे। कीचड़ से भरी हुई बेवाइयों से युक्त पैर कंकालशेष शरीर से पुष्ट जान पड़ते थे। मुख पर झुर्रियों के अक्षरों में भाग्य ने अनाड़ी बालक के समान इतना लिखा था कि अब उसका तात्पर्य पढ़ना कठिन था।

स्त्रियों के डिपार्टमेंट की आर्थिक स्थिति भी इससे कुछ अधिक अच्छी नहीं जान पड़ी। बड़ी-सी गठरी के सहारे दो वृद्धाएं सुमिरनी लिए ठंढी ज़मीन पर बैठी थीं जिनमें एक ऊंघ रही थी और दूसरी अपने आसपास बसी सृष्टि के प्रति आवश्यक चौकन्नी लगती थी। ऊंघने वाली के पैरों में कसे हुए गोल चिकने कड़े और हाथ में चांदी की एक एक चपटी चूड़ी उसके मुण्डित मुण्ड के भीतर छिपकर बची हुई शृंगारप्रियता का पता देते थे। दूसरी के गले में बंधे काले डोरे में पिरोये हुए रुद्राक्ष के दो बड़े बड़े मनके स्त्री की आभूषण-परम्परा का पालन मात्र जान पड़ते थे।

एक की आंखें माड़े से धुंधली, नाक ठुड्ढी पर झुकी हुई और मुख के भाव में एक करुण उदासीनता थी। पर कानों को धोती से बाहर निकाले और ओठों को खोलती बन्द करती हुई दूसरी, अपनी छोटी काली आंखों को घुमा कर तथा छोटी नाक के गोल नथनों को फुलाकर मानो चारों ओर बिखरे हुए रूप-रस-गन्ध-शब्द की खोज खबर ले रही थी। निकट ही रखा एक बड़ा काशीफल और उससे टिका हुआ हंसिया दोनों विरागी हृदयों का भोजन के प्रति राग प्रकट कर रहा था और ऊपर छप्पर से बंधी रस्सी की फांसी में झूलती हुई काली घी की हंडिया अपने चमकदार चिकनेपन से उन दोनों के बाह्य रूखेपन का विरोध कर रही थी।

सफ़ेद बूटेदार काली पुरानी धोती पहने हुए जो अधेड़ स्त्री, कोने में लोटे से खोली हुई डोर की अरगनी बांधने में व्यस्त थी उसे मैं नहीं देख सकी। पर अरगनी पर गुदड़ी बाजार लगाने के लिए जो फटे पुराने कपड़े संभाले खड़ी थी उसने मेरे ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित कर लिया। लाल किनारी की मटमैली धोती का नाक तक खींचा हुआ घूंघट ही उसे विशेषता नहीं देता, हाथ की मोटी कच्ची शर्बती रंग की चूड़ियां और पांव के कुछ ढीले पतले कड़े तथा दो दो बिछुवे भी उसके भिन्न सामाजिक

स्थिति का परिचय दे रहे थे। घूंघट से बाहर निकले मुख के अंश की बेडौल चौड़ाई और उसमें व्यक्त सौम्य भाव में कुछ ऐसी खींचखांच थी कि न आंख उसे सुन्दर कहती थी न मन उसे कुरूप मानता था।

उसके एक ओर दो सांवली किशोरियां एक बड़े पिटारे में न जाने क्या खोज रही थीं। उनके गोल मुखों पर झूलती हुई उलझी रूखी और मैली लटें मानो दरिद्रता की कथा के अक्षर थीं। दूसरी ओर फटी दरी के टुकड़े पर एक काली कलूटी बालिका फटा और तंग कुरता पहने सो रही थी। उसका बीच बीच में कांप उठना सर्दी और नींद के संघर्ष की तीव्रता बताता था। एक अन्य बालक खम्भे से टिककर बैठा हुआ आंखें मलकर रोने की भूमिका बांध रहा था। कुरते के अभाव में उसे एक पुराने धारीदार अँगौछे का परिधान मिल गया था पर उसका, ऊपर टँगी हंडिया और नीचे रखी गठरी को देखकर रोना प्रकट करता था कि भीतर की शीत की मात्रा बाहर की शीत से अधिक होगई है। पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्ठा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोनेवालों ने ठंढ से गठरी बनकर रात काटी है।

एक श्यामांगिनी युवती बाहर बालू में गड्ढे खोद खोदकर चूल्हे बनाने में लगी थी। कुछ गोलाई लिए हुए लम्बे रूखे और उभरी हड्डियों वाले मुख पर छोटी नथ हिल हिल कर कभी ओठ कभी कपोल का ऊपरी भाग छू लेती थी। सफ़ेद बूटीदार लाल लँहगे की काली गोट फट कर जहां-तहां से उधड़ रही थी। पीली पुरानी ओढ़नी में से व्यक्त शरीर की दुर्बलता को, जल्दी जल्दी बालू निकालने में लगे हुए हाथों का फुर्तीलापन छिपा लेता था।

भक्तिन दो उंगलियां ओठ पर स्थापित कर विस्मय के भाव से बड़-बड़ाई 'अरे मोर बपई! सगर मेला तौ हियहि सिकिल आवा है। अब ई अजाब घर छांड़ि के दूसर मेला को देखै जाई?'

उस पर एक क्रोधपूर्ण दृष्टि डाल कर मैं अभ्यागतों से सम्भाषण का बहाना सोच ही रही थी कि घूंघट वाली के सहज स्वर ने मुझे चौंका दिया 'पां लागी दिदिया ! आपका तौ हम पचै बड़ा कष्ट दिहिन है।' पांलागन के उत्तर में क्या कहा जाय यह मेरी नागरिक प्रगल्भता भी न बता सकी इसी से मैंने 'नहीं, कष्ट काहे का--जगह की कमी से आप ही लोगों को तकलीफ़ हुई, कहकर शिष्टाचार की परम्परा का जैसे पालन किया।

फिर मैं अपनी कोठरी की व्यवस्था में लग गई और भक्तिन मोटे चावल और मूंग की दाल की खिचड़ी मिलाकर और काले तिल के लड्डू लेकर दान-परम्परा की रक्षा करने गई। वहां से लौटकर उसने खिचड़ी चढ़ाई।

खाने के समय भक्तिन को दिक करना मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त और किसी भी अवसर पर वह मेरी खुशामद नहीं कर सकती। उल्टे दस-पांच सुनाने को कमर कसे प्रस्तुत रहती है।

गुड़ में बंधे काले तिल के लड्डू बहुत मीठे होने के कारण मैं नहीं खाती इसी से भक्तिन मेरे निकट 'मोदकं समर्पयामि' का अनुष्ठान पूरा करने के लिए सफ़ेद तिल धो-कूट कर और थोड़ी चीनी मिलाकर लड्डू बना लेती है। इस बार कल्पवास की गड़बड़ी में भक्तिन घर के देवता से अधिक महत्व बाहर के देवताओं को दे बैठी। मेले में देवताओं का तीन से तैंतीस कोटि हो जाना स्वाभाविक हो गया, अतः भक्तिन के लिए भी कुछ नहीं बच सका। घर की यह स्थिति भांपकर ही मुझे कौतुक सूझा और मैंने बहुत गम्भीर मुद्रा के साथ 'मेरे लिए लड्डू लाओ।'

किन्तु भक्तिन की उद्विग्नता देखने का सुख मिलने के पहले ही कल का परिचित कण्ठ-स्वर सुन पड़ा 'बिटिया रानी का हमहूँ आय सकित है ?' मैं तो छूत पाक मानती ही नहीं और भक्तिन अपनी बटलोई सहित कोयले की मोटी रेखा के भीतर सुरक्षित थी।

'इधर निकल आइये बाबा' सुनकर वृद्ध दोनों हाथों में दो दोने सँभाले हुए सामने आ खड़े हुए। सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफ़ेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आंखों में विषाद, चिन्तन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना सम्भव नहीं। लम्बी नाक के दोनों ओर खिंची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं। ओठों में व्यक्त भावुकता को विरल मूछें छिपा लेती थीं और मुख की असाधारण चौड़ाई को दाढ़ी ने साधारणता दे डाली थी। सघन दाढ़ी में कुछ लम्बे सफ़ेद बालों के बीच में छोटे काले बाल ऐसे लगते थे जैसे चांदी के तारों में जहां-तहां काले डोरे उलझ कर टूट गये हों। स्फूर्ति के कारण शरीर की दुर्बलता और कुछ झुक कर चलने के कारण लम्बाई पर ध्यान नहीं जाता था। नंगे पांव और घुटनों तक ऊंची धोती पहने जो मूर्ति सामने थी वह साधारण ग्रामीण वृद्ध से अधिक विशेषता नहीं रखती।

बूढ़े बाबा मेरे लिए तिल का लड्डू, घी, आम के अचार की एक फांक और दही लाये थे। अरुचि के कारण घी-रहित और पथ्य के कारण मिर्च अचार आदि के बिना ही मैं खिचड़ी खाती हूं, यह अनेक बार कहने पर भी वृद्ध ने माना नहीं और मेरी खिचड़ी पर दानेदार घी और थाली में एक ओर अचार रख दिया। दही का दोना थाली से टिका कर अनुनय के स्वर में कहा—'तनिक सा चीखौ तौ बिटिया रानी! का पढ़े लिखे मनई यहै खाय कै जियत हैं।'

उस दिन से उन अभ्यागतों से मेरे विशेष परिचय का सूत्रपात हुआ जो धीरे धीरे साहचर्य जनित स्नेह में परिणत होता गया।

मुझे सबेरे नौ बजे झूंसी से इस पार आना पड़ता था और वहां से तांगे

में यूनिवर्सिटी अकेले आना-जाना अच्छा न लगने के कारण मैं भक्तिन को भी इस आवागमन का आनन्द उठाने के लिए वाध्य कर देती थी। जब तक मैं लौटने के लिए स्वतन्त्र होती तब तक भक्तिन नारद के समान या तो तांगे वाले की आत्म-कथा सुन कर उसकी भूलों पर निर्णय देती या अन्य परिचितों के यहां घूम फिर कर संसार की समस्याओं का समाधान करती रहती।

सवेरे आने की हड़बड़ी में खाने पीने की व्यवस्था ठीक होना कठिन था और लौटने पर जलपान का प्रवन्ध होने में भी कुछ विलम्ब हो ही जाता था। मेरी असुविधा को उन ग्रामीण अतिथियों ने कव और कैसे समझ लिया यह मैं नहीं जानती, पर मेरे पर्णकुटी में पैर रखते ही जलपान के लिये विविध पर सर्वथा नवीन व्यंजन उपस्थित होने लगे।

फूल के बड़े कटोरे में वाजरे का दलिया और दूध, छोटी थाली में सत्तू, गुड़ या पुये, रंगीन डलिया में मुरमुरे चने या भुने शकरकन्द आदि के रूप में जो जलपान मिलता था उसे पंचायती कहना चाहिए, क्योंकि सभी व्यक्ति अपने अपने चौके में से मेरे लिए कुछ न कुछ वचा कर सींके पर रख देते थे। एक साथ इतना सव खाने के लिए मुझे जीवन की ममता छोड़नी होगी, यह वार वार समझाने पर भी उनमें से कोई मानता ही न था।

'का दिदिया न चखिहैं', 'विटिया रानी छुइ भर देतीं तौ हमार जियरा अस सिहाय जात', 'दिदिया जीभ पै तनिक धर लेतीं तौ ई सव अकारथ न जात' आदि अनुरोधों को सुन कर यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि किसे अस्वीकृति के योग्य समझा जावे। निरुपाय चना गुड़ से लेकर वाजरे के पुये तक सव प्रकार के ग्रामीण व्यंजनों से मेरी शहराती रुचि का संस्कार होने लगा।

जलपान के समारोह के उपरान्त वे सव संध्या-स्नान, गंगा में दीपदान आदि के लिए तट पर जाते और मैं उत्सुक और जिज्ञासु दर्शक के समान उनका अनुसरण करती।

'इधर निकल आइये बाबा' सुनकर वृद्ध दोनों हाथों में दो दोने सँभाले हुए सामने आ खड़े हुए। सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफ़ेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आंखों में विषाद, चिन्तन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना सम्भव नहीं। लम्बी नाक के दोनों ओर खिची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं। ओठों में व्यक्त भावुकता को विरल मूछें छिपा लेती थीं और मुख की असाधारण चौड़ाई को दाढ़ी ने साधारणता दे डाली थी। सघन दाढ़ी में कुछ लम्बे सफ़ेद बालों के बीच में छोटे काले बाल ऐसे लगते थे जैसे चांदी के तारों में जहां-तहां काले डोरे उलझ कर टूट गये हों। स्फूर्ति के कारण शरीर की दुर्बलता और कुछ झुक कर चलने के कारण लम्बाई पर ध्यान नहीं जाता था। नंगे पांव और घुटनों तक ऊंची धोती पहने जो मूर्ति सामने थी वह साधारण ग्रामीण बृद्ध से अधिक विशेषता नहीं रखती।

बूढ़े बाबा मेरे लिए तिल का लड्डू, घी, आम के अचार की एक फांक और दही लाये थे। अरुचि के कारण घी-रहित और पथ्य के कारण मिर्च अचार आदि के बिना ही मैं खिचड़ी खाती हूं, यह अनेक बार कहने पर भी वृद्ध ने माना नहीं और मेरी खिचड़ी पर दानेदार घी और थाली में एक ओर अचार रख दिया। दही का दोना थाली से टिका कर अनुनय के स्वर में कहा—'तनिक सा चीखौ तौ बिटिया रानी! का पढ़े लिखे मनई यहै खाय कै जियत हैं।'

उस दिन से उन अभ्यागतों से मेरे विशेष परिचय का सूत्रपात हुआ जो धीरे धीरे साहचर्य जनित स्नेह में परिणत होता गया।

मुझे सबेरे नौ बजे झूंसी से इस पार आना पड़ता था और वहां से तांगे

में यूनिवर्सिटी अकेले आना-जाना अच्छा न लगने के कारण मैं भक्तिन को भी इस आवागमन का आनन्द उठाने के लिए वाध्य कर देती थी। जब तक मैं लौटने के लिए स्वतन्त्र होती तब तक भक्तिन नारद के समान या तो तांगे वाले की आत्म-कथा सुन कर उसकी भूलों पर निर्णय देती या अन्य परिचितों के यहां घूम फिर कर संसार की समस्याओं का समाधान करती रहती।

सवेरे आने की हड़बड़ी में खाने पीने की व्यवस्था ठीक होना कठिन था और लौटने पर जलपान का प्रवन्ध होने में भी कुछ विलम्व हो ही जाता था। मेरी असुविधा को उन ग्रामीण अतिथियों ने कब और कैसे समझ लिया यह मैं नहीं जानती, पर मेरे पर्णकुटी में पैर रखते ही जलपान के लिये विविध पर सर्वथा नवीन व्यंजन उपस्थित होने लगे।

फूल के वड़े कटोरे में वाजरे का दलिया और दूध, छोटी थाली में सत्तू, गुड़ या पुये, रंगीन डलिया में मुरमुरे चने या भुने शकरकन्द आदि के रूप में जो जलपान मिलता था उसे पंचायती कहना चाहिए, क्योंकि सभी व्यक्ति अपने अपने चौके में से मेरे लिए कुछ न कुछ बचा कर सींके पर रख देते थे। एक साथ इतना सब खाने के लिए मुझे जीवन की ममता छोड़नी होगी, यह बार बार समझाने पर भी उनमें से कोई मानता ही न था।

'का दिदिया न चखिहै', 'विटिया रानी छुइ भर देतीं तौ हमार जियरा अस सिहाय जात', 'दिदिया जीभ पै तनिक धर लेतीं तौ ई सब अकारथ न जात' आदि अनुरोधों को सुन कर यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि किसे अस्वीकृति के योग्य समझा जावे। निरुपाय चना गुड़ से लेकर वाजरे के पुये तक सव प्रकार के ग्रामीण व्यंजनों से मेरी शहराती रुचि का संस्कार होने लगा।

जलपान के समारोह के उपरान्त वे सब संध्या-स्नान, गंगा में दीपदान आदि के लिए तट पर जाते और मैं उत्सुक और जिज्ञासु दर्शक के समान उनका अनुसरण करती।

कल्पवासी एक ही बार खाते और माघ के कड़कड़ाते जाड़े में भी आग न तापने के नियम का पालन करते। इन नियमों के मूल में कुछ तो लकड़ी का मंहगापन और अन्न का अभाव रहता है और कुछ तपस्या की परम्परा।

पर मुझे सर्दी में अलाव जलता हुआ देखना अच्छा लगता है। लकड़ी कन्डों का अभाव तो था ही नहीं। बस पर्णकुटी के बाहर बड़ा सा ढेर लगाकर मैं होली जलाती और अतिथियों की गृहस्थी के साथ आई हुई एक पुरानी मचिया पर बैठ कर तापती। उनके बच्चे जो कल्पवास के कठोर नियमों से मुक्त थे और मेरी भक्तिन जिसका कल्पवास परलोक से अधिक इस लोक से सम्बन्ध रखता था आग के निकट बैठकर हाथ पैर सेंकते। सच्चे कल्पवासी अपने और आग के बीच में इतना अन्तर बनाये रखते थे जितने में, पाप-पुण्य का लेखा जोखा रखनेवाले चित्रगुप्त महोदय धोखा खा सकें।

इस विचित्र सम्मेलन का कार्यक्रम भी वैसा ही अनोखा था। कोई भजन सुनाता, कोई पौराणिक कथा कहता। कभी किम्बदन्तियों के नये भाष्य होते, कभी लोकचर्चा पर मौखिक टीकायें रची जातीं। कबीर की रहस्यमय उलटबांसियों से लेकर, अच्छा बैल ख़रीदने के व्यावहारिक नियम तक सब में उन ग्रामीणों की अच्छी गति थी, इसी से उनकी संगति न एक-रस जान पड़ती थी न निरर्थक। इस सम्पर्क के कारण ही मैं उनकी जीवन-कथा से भी परिचित होती गई.।

बूढ़े ठकुरी बाबा भाटवंश में अवतीर्ण होने के कारण कवि और कवि होने के कारण मेरे सजातीय कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग में भाट चारणों के कर्तव्य और आवश्यकता में बहुत अन्तर पड़ चुका है, इसी से न कोई उनके अस्तित्व को जानता है और न उनके कवित्व-व्यवसाय का मूल्य समझता है। अब तो उनका पैतृक धन्धा व्यक्तिगत मनोविनोद मात्र रह गया है।

समय के प्रवाह को देख कर ही ठकुरी बाबा के पिता ने तुकबन्दी

के लिए मिली हुई प्रतिभा का उपयोग साधारण किसान बनने में किया और अपनी दिवंगता प्रथम पत्नी के दोनों सुयोग्य पुत्रों को भी नीतिशास्त्र में पारंगत बनाकर भावुकता के प्रवेश का मार्ग ही बन्द कर दिया।

दूसरी नवोढ़ा पत्नी भी जब परलोकवासिनी हुई तब उसका पुत्र अबोध बालक था पर पिता ने प्रिय पत्नी के प्रति विशेष स्नेह-प्रदर्शन के लिए उसे साक्षात कौटिल्य बनाने का संकल्प किया। इस शुभ संकल्प की पूर्ति के लिए जैसा भगीरथ प्रयत्न किया गया उसे देखते हुए असफलता को दैवी ही कहा जायगा।

संभवतः पति की नीतिमत्ता से भाग कर परलोक में शरण पाने वाली मा पुत्र को बचाने के लिए उस पर भावुकता की वर्षा करने लगी हो। हो सकता है कि कौटिल्य ने दूसरे कौटिल्य की सम्भावना से कुपित होकर उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी हो। पर यह सत्य है कि हठी बालक ने अपना पराया तक नहीं सीखा—नीति के अन्य अंगों की तो चर्चा ही क्या। हताश पिता ने इस कठोर शिक्षा का भार बड़े पुत्रों पर छोड़कर अपने जीवन से अवकाश ग्रहण किया।

सौतेले भाई बड़े और गृहस्थीवाले थे, इसी से घर द्वार सब उन्हीं के अधिकार में रहा और छोटा भाई चाकरी के बदले में भोजन-वस्त्र पाता रहा। उसका कवित्व भाइयों के लिए लाभप्रद ही ठहरा, क्योंकि कोई भी कला सांसारिक और विशेषतः व्यावसायिक बुद्धि को पनपने ही नहीं दे सकती और बिना इस बुद्धि के मनुष्य अपने आपको हानि पहुँचा सकता है दूसरों को नहीं।

जब जात बिरादरी में छोटे भाई को अविवाहित रखने पर टीका टिप्पणी होने लगी तब भाइयों ने उसका एक सुशील बालिका से गठबन्धन कर दिया और, भौजाइयों ने देवरानी को सेवाधर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया।

दम्पति सुखी नहीं हो सके यह कहना व्यर्थ है। दासों का एक से दो होना प्रभुओं के लिए अच्छा हो सकता है, दासों के लिए नहीं। एक ओर

उस से प्रभुता का विस्तार होता है और दूसरी ओर पराधीनता का प्रसार। स्वामी तो साम-दाम-दण्ड-भेद द्वारा उन्हें परस्पर लड़ाकर दासता को और दृढ़ करते रहते हैं और दास अपनी विवश झुंझलाहट और हीन भावना के कारण एक दूसरे के अभिशापों को विविध बनाकर उससे बाहर आने का मार्ग अवरुद्ध करते रहते हैं।

देवर देवरानी मिलकर यदि गृहस्थी बसा लेते तो सेवा का प्रश्न कठिन हो जाता, इसी से भौजाइयां नई बहू की चुगली करके उसे पति के निकट अपराधिनी के रूप में उपस्थित करने लगीं। पत्नी की निर्दोषिता के सम्बन्ध में पति का मन विश्वास और अविश्वास के हिंडोले में झोंके खाता था, पर न उसने अपने विश्वास को प्रकट करके वधू को सान्त्वना दी, न अविश्वास प्रकट करके अपने मन का समाधान किया।

गर्वीली पत्नी भी अपनी ओर से कुछ न कहकर अविराम परिश्रम द्वारा मन का आक्रोश व्यक्त करने लगी। ठकुरी बेचारे कवि ठहरे। शुष्क यथार्थता उनकी भाव-बोझिल कल्पना के घटाटोप में प्रवेश करने के लिए कोई रंध्र ही न पाती थी।

कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता तो किसी के भी मचान पर बैठकर रात-रात भर खेत की रखवाली करते रहते। कोई बारहमासा सुननेवाला रसिक श्रोता मिल जाता तो उसके बैलों का सानीपानी करने में भी हेठी न समझते। कोई आल्हा ऊदल की कथा सुनना चाहता तो मीलों पैदल दौड़े चले जाते। कही होली का उत्सव होता तो अपने कबीर सुनाने में भूख प्यास भूल जाते।

अपनी इस काव्य-वाचकता के कारण वे कोई और काम ठीक से न कर पाते थे। नागरिक शिष्ट समाज के समान कोई उन्हें पचास रुपया फीस देकर गलेबाज़ी के लिए नहीं बुलाता था, इसी से अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन

सुदामा ही रह गये। किसी ने मैली पिछौरी के खूंट में थोड़ा सा तिल गुड़ बांधकर उदारता प्रकट की। किसी ने पथरौटी में सत्तू पर नमक के साथ हरी मिर्च रखकर आतिथ्य सत्कार किया। किसी ने सुलगे हुए कन्डों पर दो भौरियां सेंकने का अनुरोध करके काव्यमर्मज्ञता का परिचय दिया। इन पुरस्कारों को पाकर ठकुरी प्रसन्न न थे। यह कहना मिथ्यावाद होगा। उनकी काव्यजनित अकर्मण्यता भाइयों की उपेक्षा, भौजाइयों के व्यंग और पत्नी की मर्मपीड़ा का कारण थी इसे भी वे नही जानते थे।

कुछ वर्षों में पत्नी ने उन्हें एक कन्या का उपहार दिया। पर इसके उपरान्त वह विश्राम और पथ्य के अभाव में प्रसूति ज्वर से पीड़ित हुई तथा उचित चिकित्सा के अभाव में डेढ़ वर्ष की वालिका छोड़कर अपने कठोर जीवन से मुक्ति पा गई। ठकुरी उसी रात आल्हा सुनाकर लौटे थे। माता की मृत्यु का उन्हें स्मरण नहीं था, वृद्ध पिता की विदा ने उनके मर्म को छेदा नहीं था। पर यौवन के प्रथम प्रहर में सारे स्नेहवंधन तोड़ जानेवाली पत्नी ने उनके हृदय को हिला दिया। खारे आंसुओं ने आंखों का गुलावीपन धोकर उन्हें जीवन-दर्शन के लिए स्वच्छ वनाया। पत्नी को खोकर ही ठकुरी वास्तविक पति और पिता वन सके।

घर में वालिका की उपेक्षा देखकर और उसके परिणाम की कल्पना करके वे अलगौझे पर वाध्य हुए तथा घर की व्यवस्था के लिए अपनी बूढ़ी मौसी को लिवा लाए। पर कन्या की देख-रेख वे स्वयं करते थे। आल्हा ऊदल की कथा के प्रेमी पिता की वेला, विनोद के समय उनके कंधे पर चढ़ी हुई घूमती थी और काम के समय पीठ पर वंधी हुई उनके काम की निगरानी करती थी। किसी के हँसने पर ठकुरी कह देते कि जव मजदूर मां अपने वच्चे को लेकर काम करती है तव पिता के ऐसा करने में लजाने की कौन वात है! वेला के लिए तो वही वाप है और वही मां।

बालिका जब छः सात वर्ष की हुई तब ठकुरी किसी काव्यप्रेमी सजातीय के सुशील पर मातृपितृहीन भतीजे को ले आये और बेला की सगाई करके भावी जामाता को अपना कामकाज सिखाने लगे। भाग्य सम्भवतः इस देहाती कवि से रुष्ट था, इसी से शिक्षा समाप्त होते ही भावी जामाता के चेचक निकल आई। वह बच तो गया पर एक आंख के लिए सम्पूर्ण सृष्टि अन्धकार-मय हो गई और दूसरी में इतनी ज्योति शेष रही कि ठोस संसार भाप का बादल सा दिखाई पड़ने लगा।

पिता ने कन्या की इच्छा जाननी चाही पर वह हठ में महोबे की लड़ाई की उस बेला के समान निकली जिसने पिता के बाग में लगे चन्दन की चिता पर ही सती होने का प्रण किया था। बेला ने बचपन के साथी को छोड़ना नहीं चाहा और इस प्रकार ठकुरी बाबा वचन-भंग के पातक से बच गए।

अब कवि ससुर, उसकी बूढ़ी मौसी, अंधा दामाद और रूपसी बेटी एक विचित्र परिवार बनाये बैठे हैं। ससुर ने जामाता को भी काव्य की पर्याप्त शिक्षा दे डाली है। जब ठकुरी चिकारा बजाकर भक्ति के पद गाते हैं तब वह खँजड़ी पर दो उंगलियों से थपकी देकर तान संभालता है, बूढ़ी मौसी तन्मयता के आवेश में मँजीरा झनकार देती है और भीतर काम करती हुई बेला की गति में एक थिरकन भर जाती है।

घर में एक मुर्रा भैंस, दो पछाही गायें और एक हल की खेती होने के कारण जीवनयापन का प्रश्न विशेष समस्या नहीं उत्पन्न करता। यह विचित्र परिवार हर वर्ष माघमेले के अवसर पर गंगातीर कल्पवास करके पुण्य-पर्व मनाता है। इसके साथ गांव के अन्य भक्तगण भी खिचे चले आते हैं।

ठकुरी बाबा तो सबको अपना अतिथि बनाने को प्रस्तुत रहते हैं। पर कल्पवास में दूसरे का अन्न खाने वाले को विनिमय में अपना पुण्यफल

दे देना पड़ता है, इसी से वे सब अपनी अपनी गठरी मुटरी में खाने पीने का सामान लेकर घर से निकलते हैं। पर वस्तु से वस्तु का विनिमय वर्ज्य नहीं माना जाता चाहे विनिमय वाली वस्तुओं में कितनी ही असमानता क्यों न हो। आवश्यकता और नियम के बीच में वे सरल ग्रामीण जैसा समझौता करा देते हैं उसे देखकर हँसी आये बिना नहीं रहती। कोई गुड़ की एक डली रखकर ठकुरी बाबा से आध सेर आटा ले जाता है, कोई चार मिर्च देकर आलू-शकरकन्द का फलाहार प्राप्त कर लेता है। कोई पत्ते पर तोला भर दही रख कर कटोरा भर चावल नापता है। कोई धूप के लिए रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध चाहता है।

ठकुरी बाबा को देने में एक विशेप प्रकार की आनन्दानुभूति होती है, इसी से वे स्वयं पूछ पूछकर इस विनिमय व्यापार को शिथिल होने नहीं देते। वे भावुक और विश्वासी जीव हैं। चिकारा हाथ में लेते ही उनके लिए संसार का अर्थ बदल जाता है। उनकी उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि गुण ग्रामीण जीवन के लक्षण होने पर भी अब वहां सुलभ नहीं रहे। वास्तव में गांव का जीवन इतना उत्पीड़ित और दुर्वह होता जा रहा है कि उसमें मनुष्यता को विकास के लिए अवकाश मिलना ही कठिन है।

सदा के समान इस वर्ष भी ठकुरी बाबा के दल में विविधता है। भोजन की व्यवस्था के लिए बालू खोदकर चूल्हे बनाती हुई लोक-चिन्ता-रत बेटी, चिकारा मँजीरे और डफली आदि की पृष्ठभूमि के साथ स्वप्न-दर्शन में अचल जामाता और घी की हंडिया काशीफल आदि के बीच में बैठकर लोक और परलोक की समस्या सुलझाती हुई मौसी से ठकुरी बाबा का कुटुम्ब बना है। शेष मानो विभिन्न वर्गों और जातियों की सम्मिलित परिषद है।

एक वृद्धा ठकुराइन हैं। पति के जीवनकाल में वे परिवार में रानी की स्थिति रखती थीं, परन्तु विधवा होते ही जिठौतों ने निःसन्तान काकी से मत

देने का अधिकार भी छीन लिया। गांव के नाते वे ठकुरी की बुआ होती थीं, इसी से पुण्य कमाने के अवसर पर वे उन्हें साथ लाना नहीं भूलते।

दूसरी एक सहुआइन हैं जिनके पति गांव की तेली-बालिका को लेकर कलकत्ते में कर्तव्यपालन कर रहे हैं। विवाहिता जीवन के डबल सर्टीफिकेट के समान दो दो बिछुए पहनकर और नाक तक खिंचे घूंघट में वधूवंश की मर्यादा को सुरक्षित रखकर वे परचून की दूकान द्वाराजीवनयापन करती हैं।

हर माघ में वे अपने दो किशोर बालकों के साथ आकर कल्पवास की कठोरता सहती हैं और कमर तक जल में खड़ी होकर भावी जन्मों में साहु जी को पाने का वरदान मांगती हैं। पति ने उनका इहलोक बिगाड़ दिया है पर अब उसके अतिरिक्त किसी और की कामना करके वे परलोक नहीं बिगाड़ना चाहतीं।

तीसरा एक विधुर काछी है। किसी के खेत के टुकड़े में कुछ तरकारी बो कर किसी की आम की बगिया की रखवाली करके अपना निर्वाह करता है। उसकी घरवाली तीन पुत्रियों की भेंट दे चुकी थी। चौथा पुत्र-उपहार देने के अवसर पर वह संसार के सभी आदान-प्रदानों से छुट्टी पा गई। रात दिन कठोर परिश्रम करके भी उसे प्रायः भूखा सोना पड़ता था। चौथी बार पुत्र-जन्म के उपरान्त घर में थोड़ा चावल ही मिल सका। बड़ी लड़की ने उसी का भात चढ़ा दिया। भात यदि मां खा लेती तो बच्चे भूखे सोते, इसी से उसने चावल पसा कर माड़ स्वयं पी लिया और भात उनके लिए रख दिया। उसी रात वह सन्निपात-ग्रस्त हुई और तीसरे दिन नवजात पुत्र के साथ ही उसके जीवन की कठिन तपस्या समाप्त हो गई।

पिछले वर्ष काछी आम के पेड़ पर से गिर पड़ा तब से न वह सीधा खड़ा हो सकता है और न कठिन परिश्रम के योग्य है। दोनों किशोरी बालि-कायें कभी सहुआइन भौजी के कंडे पाथकर, कभी पंडिताइन का घर लीपकर

कुछ पा जाती हैं, पर छोटी बालिका पिता के गले की फांसी हो रही है। ठकुरी बाबा के भरोसे ही वह अपनी तीन जीवों की सृष्टि लेकर कल्प-वास करने आता है, पर गंगा माई से वह मांगता क्या है इसका अनुमान लगाना कठिन है।

चौथे ब्राह्मण दम्पति हैं। गँवई गांव की यजमानी वह कामधेनु नहीं है कि पंडित जी महन्ती मांग लेते, पर कहीं कथा बांचकर और कहीं पुरोहिती करके वे आजीविका का प्रश्न हल कर लेते हैं। विधाता ने जाने कैसा षड्यन्त्र रचकर उन्हें पुं नामक नरक से उबारने वाले को अवतार नहीं लेने दिया। पर पंडित जी अपनी स्तुतियों द्वारा गंगा को गदगद करके बेचारे चित्रगुप्त का लेखा-जोखा व्यर्थ कर देना चाहते हैं।

पंडिताइन भी अच्छी हैं। पर सन्तान के लिए इतनी लम्बी प्रतीक्षा ने उनकी आशा के माधुर्य में वैसी ही खटाई उत्पन्न कर दी है जैसी देर से रखे हुए दूध के फट जाने पर स्वाभाविक है।

पति के पूजा-पाठ का खटराग पंडिताइन को फूटी आंख नहीं सुहाता, इसी से वह कभी चन्दन का मुठिया नाज में गाड़ देती है, कभी सुमिरनी मोखे में छिपा आती है और कभी पोथी-पत्रा अपनी पिटारी में बन्द कर रखती है।

एक ममेरी विधवा बहिन का देहान्त हो जाने पर पंडित, बालक भांजे को आश्रय देने के लिए बाध्य हो गए। तब से वही महाभारत की द्रौपदी बन गया है। उस से पुत्र का अभाव भरने के स्थान में और अधिक रिक्त होता जा रहा है। अपना होता तो कहना मानता, अपना रक्त होता तो अपनी ममता करता आदि का अर्थ बालक की अबोधता देख कर समझ में नहीं आता। वह बेचारा इन सिद्धान्त वाक्यों को केवल चकित, विस्मित भाव से सुनता रहता है, क्योंकि अपने पराये की परिभाषा अभी तक उसने सीखी ही नहीं है। जैसा वह मां के जीवनकाल में था वैसा ही आज भी है। अब अचानक

वह मामी को इतना क्रोधित कैसे कर देता है, यह प्रश्न उसके मन को जब मथ डालता है तब वह फूट फूट कर रो उठता है।

इस विचित्र साम्राज्य के साथ मैंने माघ का महीना भर बिताया, अतः इतने दिनों के संस्मरण कुछ कम नहीं हैं। पर, इनमें एक सन्ध्या मेरे लिए विशेष महत्त्व रखती है।

मैं अधिक रात गए तक पढ़ती रहती थी, इसी से मेरा वह अतिथि वर्ग भजन-कीर्तन के लिए दूसरे कल्पवासियों की मण्डली में जा बैठता था। एक दिन ठकुरी बाबा ने स्नेह भरी शिष्टता के साथ कहा कि एक बार अपनी कुटी में भी भगत हो तो अच्छा है। मैं कोलाहल से दूर रहती हूँ इसी से भजन-कीर्तन में सम्मिलित होना भी मेरे लिए सहज नहीं होता। पर उस दिन सम्भवतः कुतूहलवश ही मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दिन निश्चित हो गया।

माघी पूर्णिमा के पहले आने वाली त्रयोदशी रही होगी। सबेरे कुछ मेघ-खण्ड आकाश में एकत्र हो गए थे पर सन्ध्या की सुनहली आभा के खर प्रवाह में वे धारा में पड़े नीले कमलों के समान बह कर किसी अज्ञात कूल से जा लगे। सन्ध्या-स्नान और गंगा में दीपदान करके वे सब कुटी के बरामदे में और बाहर बालू पर एकत्र हो गए।

पंडितजी ने पूजा के लिए एक छोटे गमले में मिट्टी भर कर तुलसी रोप दी थी। उसी को बीच में स्थापित करके बालू का एक छोटा सा चबूतरा बनाया गया।

फिर बूढ़ी मौसी के पिटारे में रक्खी हुई द्वारकाधीश की ताम्रमयी छाप, पंडितजी की रंगीन काठ की डिबिया के बन्दी शालग्राम, ठकुराइन बुआ के, चांदी की जलहरी में विराजमान महादेवजी, ठकुरी बाबा का पुराने फ्रेम और टूटे शीशे में जड़ा हुआ राम पञ्चायतन का चित्र, सूर

के हाथ में लड्डू लिए पीतल के बालमुकुन्द, और सहुआइन भौजी के पास पति की स्मृति के रूप में रखे हुए मिट्टी के गणेश सब उसी चबूतरे पर प्रतिष्ठित हो गए। जान पड़ता था भक्तों ने अपने देवताओं को भी सम्मेलन के लिए बाध्य कर दिया है।

बैठने में भी व्यवस्था की कमी नहीं दिखाई दी। खुले बरामदे में मेरे लिए आसन बिछा था। दाहिनी ओर दोनों बूढ़ियां और कुछ हट कर सहुआइन और पंडिताइन बैठी थीं। बाईं ओर बच्चों की पंगित थी जिन्हें सर्दी से बचाने के लिए सहुआइन ने अपनी दुसूती चादर खोल कर ओढ़ा दी थी। देवताओं के सामने पंडित जी पुरानी पोथी खोले विराजमान थे। उनसे कुछ हट कर ठकुरी बाबा चिकारे की खूंटी ऐंठ रहे थे और उनके गीत की हर कड़ी ठीक ठीक सुनने के लिए सट कर बैठा हुआ जामाता गोद में रखी खँजड़ी पर ममता से उँगलियां फेर रहा था।

काछी काका इन दोनों से कुछ दूर फटी चादर में सिकुड़े हुए थे। झुकी हुई पीठ के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो बालू के कणों में कुछ पढ़ रहे हैं। दस-पांच और ऐसे ही कल्पवासी आ गए थे। धूप लाना, आरती के लिये फूलबत्ती बनाना, घी निकालना आदि काम बेला के जिम्मे थे, अतः वह फिरकनी के समान इधर उधर नाच रही थी।

भक्तों ने 'तुलसा महरानी नमो नमो' गाया और पंडितजी ने पूजा का विधान समाप्त किया। तब तांबे के पञ्चपात्र और आचमनी से गंगाजल और तुलसीदल बांटा गया। गंगाजल भक्त मंडली पर छिड़क कर पंडित देवता ने कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध संस्कृत में गंगा के महात्म का पाठ किया। फिर उच्च स्वर से रामायण का वह अवतरण गाया जिसमें श्री राम-जानकी लक्ष्मण गंगा पार करते हैं। श्रोतागणों में अधिकांश को वह अवतरण कंठस्थ होने के कारण कथावाचक का स्वर अन्य स्वरों की समष्टि में डूब कर अपना बेसुरापन छिपा सका।

तब गौरी गणेश की वन्दना से गीत-सम्मेलन आरम्भ हुआ। यह कहना कठिन होगा कि उनमें कौन सुन्दर गाता था, पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि सभी के गीत तन्मयता के सञ्चार में एक से प्रभविष्णु थे।

कबीर, सूर, तुलसी जैसे महान कवियों से लेकर अज्ञातनामा ग्रामीण तुक्कड़ों तक के पद उन्हें स्मरण थे। एक जो कड़ी गाता था उसे सब का समवेत स्वर दोहरा देता था। दबे पांव तट तक आकर फिर खिलखिलाती हुई सी लौटने वाली लहरें मानो अविराम ताल दे रही थीं।

गायकों में क्रम था और गीतों में गाने वालों की अवस्था के अनुसार विविधता। सब से पहले दो बूढ़ियों ने गाया। ठकुरी बाबा की मौसी ने 'सो ठाढ़े दोउ भइया सुरसरि तीर। ऐही पार से लखन पुकारें केवट लाओ नइया सुरसरि तीर।' गाकर बनवासी राम का जो मार्मिक चित्र उपस्थित किया उसी की प्रतिकृति ठकुराइन की 'दखिन दिसा हेरें भरत सकारे, आजु अवइया मोरे राम पियारे ! दिवस गिनत मोरी पोरें खियानी, मग जोवत थाके नैन के तारे ! आदि पंक्तियों में मिली। सांस भर आने के कारण रुक रुक कर गाये हुए गीत मानो हृदय के रस से भीग कर भारी हो गए थे।

पंडिताइन के 'कहन लागे मोहन मइया मइया' में यदि भाव का विस्तार था तो सहुआइन के 'चले गए गोकुल से बलबीरा चले गए .... बिलखत ग्वाल बिसूरति गौयें तलफत जमुना-नीरा चले गए।' में अभाव की गहराई। 'सुनाये बिना गुजर न होई' कह कह कर गवाये हुए काछी काका के, 'मन मगन भया तब क्या बोलैं' में यदि तन्मयता की सिद्धि थी तो अन्धे युवक के 'सुधि ना बिसरै मोहि श्याम तुम्हरे दरसन की' में स्मृति की साधना।

ठकुरी बाबा ने खांस खांस कर कण्ठ साफ़ करने के उपरान्त आंख मूंद कर गाया—

खेलै लागे अंगना में कुंवर कन्हइया हो !
बोलै लागे 'मइया नीको छोटो बलमइया हो' !
खटरस भोग उनहि नहि भावै रामा
मइया माखन रोटी खवावै लै बलइया हो।
साला दुसाला मनहि नहि आवै रामा
हंसिकै कारी कमरी उढ़ावै उनकर मइया हो !
लैके भौंरा चकई खेलन नहि जावै रामा,
मांगै 'दै दे लकुटी मैं घेरि लावौं गइया हो' !

कृष्ण के जीवन में साधारण व्यक्ति को क्यों इतना अपमान मिलता है, इस प्रश्न का जो उत्तर उस दिन सहज ही मिल गया उसका अन्यत्र मिलना कठिन होगा।

स्वर, रेखायें और रंग भी प्रत्यक्ष कर सकते हैं यह उनकी गीत-लहरी की चित्रमयता से प्रत्यक्ष हो गया।

बूढ़े से बालक तक सबको एक ही स्पन्दन, एक ही पुलक और एक ही भाव बांधे हुए था।

कितनी देर तक उन्होंने क्या क्या गाया यह बताना सम्भव नहीं, क्योंकि जब अन्तिम आरती ने इस सम्मेलन की समाप्ति की सूचना दी तब मैं मानो नींद से जागी।

थोड़ी देर में सब बरामदे में अपना अपना बिछौना ठीक करके लेट गए, किन्तु मैं अपनी कोठरी में पीतल की दीवट में जलते हुए दिये के सामने बैठ कर कुछ सोचती सी रह गई।

सहुआइन ने पहले बाहर से झांका फिर एक पैर भीतर रख कर विनीत भाव से जो कहा उसका आशय था कि अब दिये को बिदा कर देना चाहिये। उसकी मां राह देखती होगी।

हँसी मेरे ओठों तक आकर रुक गई। जब इनके लिए सब कुछ सजीव है तब ये दीपक की मां की और उसकी प्रतीक्षा की कल्पना क्यों न करें! बुझाये देती हूँ कहने पर सहुआइन ने आगे बढ़ कर आंचल की हवा से उसे बुझा दिया। बेचारी को भय था कि मैं शहराती शिष्टाचारहीनता के कारण कहीं फूंक से ही न बुझा बैठूं।

कितनी देर तक मैं अन्धकार में बैठ कर सोचती रही यह स्मरण नहीं पर जब मैं कुटी के बाहर आकर खड़ी हुई तब रात ढल रही थी। निस्तब्धता से भीगी चांदनी हल्की सफ़ेद रेशमी चादर की तरह लहरों में सिमटी और बालू में फैली हुई थी।

मेरी पर्णकुटी के दो बरामदे चांदनी से धुल से गए थे—उनमें ठंढी ज़मीन, चादर, पुआल आदि पर जो सृष्टि सो रही थी उसके बाह्य रूप और हृदय में इतना अन्तर क्यों है, यही मैं बार बार सोच रही थी। उनके हृदय का संस्कार, उनकी स्वाभाविक शिष्टता, उनकी रस-विदग्धता, उनकी कर्मठता आदि का क्या इतना कम मूल्य है कि उन्हें जीवन-यापन की साधारण सुविधायें तक दुर्लभ हो जावें।

उन मानव-हृदयों में उमड़ते हुए भाव-समुद्र की जो स्पर्श-मधुर तरंग मुझे छू भर गई थी उसी की स्मृति मेरे मानस-पट पर न जाने कितने विरोधी चित्र आंकने लगी।

कितने ही विराट कविसम्मेलन, कितनी ही अखिल भारतीय कवि-गोष्ठियां मेरी स्मृति की धरोहर हैं। मन ने कहा—खोजो तो उनमें कोई इससे मिलता हुआ चित्र—और बुद्धि प्रयास में थकने लगी।

सजे हाल, ऊँचे मञ्च, मालाविभूपित सभापति मेरी स्मृति में उदय हो आये। उनके इधर-उधर देवदूतों के समान विराजमान कविगण रूप और मूल्य दोनों में अपूर्व थे। कोई फर्स्ट क्लास का किराया लेकर थर्ड की शोभा

बढ़ाता हुआ आया था। कोई अपने कार्यवश पहले ही से उस नगर में उपस्थित था, पर थोड़ा समय वहां बिताने के लिए इतनी फ़ीस चाहता था जिसमें आना जाना और आवश्यक कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त भी कुछ बच सके। किसी ने अपने काव्य की महार्घता बढ़ाने के लिए ही अपनी गवैयाशी का चौगुना मूल्य निश्चित किया था।

मूल्य से जो महत्ता नहीं व्यक्त हो सकी वह वेश-भूषा में प्रत्यक्ष थी। किसी के नये सिले सूट की अंगरेज़ियत, ताम्बूलराग की स्वदेशीयता में रञ्जित होकर निखर उठी थी। किसी का चीनांशुक का लहराता हुआ भारतीय परिधान सिगरेट की धूमलेखाओं में उलझ कर रहस्यमय हो रहा था। किसी के सिर के खड़े बाल अमामी से संगमूसा के चमकीले फ़र्श की भ्रान्ति उत्पन्न करते थे। किसी की सिल्की शैम्पू से धुली सीधी लटों का कृत्रिम कुञ्चन विधाता पर मनुष्य की विजय की घोषणा करता।

कुछ प्राचीनतावादियों की कभी निर्निमेष खुली आंखें और कभी मिलित पलकें प्रकट करती थीं कि काव्य-रस में विश्वास न होने के कारण उन्हें विजया से सहायता मांगनी पड़ी है।

इन आश्चर्य-पुत्रों के सामने श्रोतागणों की जो समष्टि थी वह मानो उनके चमत्कारवाद की परीक्षा लेने के लिए ही एकत्र हुई थी!

कचहरी में गवाहों की पुकार के समान नामों की पुकार होती थी। कवियों में कोई मुस्कराता, कोई लजाता, कोई आत्म-विश्वास से छाती फुलाता हुआ आगे आता। कोई पंचम, कोई षड्ज, कोई गान्धार और कोई सब स्वरों के अभाव में एक सानुनासिकता के साथ कलाबाज़ियों में काव्य को उलझा उलझा कर श्रोताओं के सामने उपस्थित करता और 'वाह वाह' के लिए सब ओर गर्दन घुमाता।

उनके इतने करतब पर भी दर्शक चमत्कृत होना नहीं जानते थे। कहीं

से आवाज़ आती—कण्ठ अच्छा नहीं है। कोई बोल उठता—भाव भी बताते जाइए। किसी ओर से सुनाई पड़ता—बैठ जाइए। कोई धृष्ट श्रोता कवि से किसी उच्छृंखल शृंगारमयी रचना को सुनाने की फ़रमाइश करके महिलाओं की पलकों का झुकना देखता।

कवि भी हार न मानने की शपथ लेकर बैठते हैं। 'वह नहीं सुनना चाहते तो इसे सुनिये।' 'यह मेरी नवीनतम कृति है ध्यान से सुनिये', आदि आदि कह कर वे पंडों की तरह पीछे पड़ जाते हैं। दोनों ओर से कोई भी न अपनी हार स्वीकार करने को प्रस्तुत होता है और न दूसरे को हराने का निश्चय बदलना चाहता है।

कभी कभी आठ आठ घण्टे तक यह कवायद चलती रहती है पर इतने दीर्घ समय में ऐसे कुछ क्षण भी निकालना कठिन होगा जिसमें कवि का भाव श्रोता में अपनी प्रतिध्वनि जगा सका हो और दोनों पक्ष, बाजीगर और तमाशबीन का स्वांग छोड़ कर काव्यानन्द में एकत्व प्राप्त कर सके हों। कवि कहेगा ही क्या, यदि उसकी इकाई सब की इकाई बन कर अनेकता नहीं पा सकी और श्रोता सुनेंगे ही क्या, यदि उन सब की विभिन्नतायें कवि में एक नहीं हो सकीं।

जब यह समारोह समाप्त हो जाता है तब सुननेवाले निराश और सुनाने वाले थके हुए से लौटते हैं। उन पर काव्य का सात्विक प्रभाव कितना कम रहता है इसे समझने के लिए उन सम्मेलनों का स्मरण पर्याप्त होगा जिनसे लौटनेवालों में कतिपय व्यक्ति संगीत-व्यवसायिनियों के गान से मन बहलाने में नहीं हिचकते।

भाव यदि मनुष्य की क्षुद्रता, दुर्भावना और विकृतियां नहीं बहा पाता तब वह उसकी दुर्बलता बन जाता है। इसी से स्नेह करुणा आदि के भाव

हृदय की शक्ति बन सकते हैं और द्वेष, क्रोध आदि के दुर्गम उन्हें और अधिक दुर्बल स्थिति में छोड़ जाते हैं।

ग्रामीण समाज अपने रस-समुद्र में व्यक्तिगत भेदबुद्धि और दुर्बलतायें सहज ही डुबा देता है इसी से उस भावस्नान के उपरान्त वह अधिक स्वस्थ रूप प्राप्त कर सकता है।

हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरञ्जन मात्र रहता है, इसी से उसमें सम्मिलित होने वालों की भेदबुद्धि, एक दूसरे को नीचा दिखलाने के प्रयत्न और वैयक्तिक विषमतायें और अधिक विस्तार पा लेती हैं। एक वह हिंडोला है जिसमें ऊँचाई नीचाई का स्पर्श भी एक आत्मविस्मृति में विश्राम देता है। दूसरा वह दंगल का मैदान है जिसका सम धरातल भी हार-जीत के दांव-पेच के कारण सतर्कता की श्रान्ति उत्पन्न करता है।

अपने इन सम्मेलनों की व्यर्थता का मुझे ज्ञान था पर उसमें छिपी कदर्थना की अनुभूति उसी दिन सुलभ हो सकी। इसके कुछ वर्षों के उपरान्त तो वह स्थिति इतनी दुर्वह हो उठी कि मुझे शिष्ट सम्मेलनों से विदा ही लेनी पड़ी।

ख्याति के मध्याह्न में कवि के लिए, अपने प्रशंसकों और अपने बीच में ऐसा दुर्भेद्य परदा डाल लेना सहज नहीं होता। उस सरल जीवन की सात्विकता ने यदि दूसरे पक्ष की कृत्रिमता, इतनी कठिन रेखाओं में न आंक दी होती तो मेरा विद्रोह इतना तीव्र न हो पाता। विशेषतः ऐसा करना तब और भी कठिन हो जाता है जब आडम्बर के साथ अर्थ भी उपस्थित हो, क्योंकि अर्थ ही इस युग का देवता है।

कवि अपनी श्रोता मण्डली में किन गुणों को अनिवार्य समझता है यह प्रश्न आज नहीं उठता पर अर्थ की किस सीमा पर वह अपने सिद्धान्तों का

वोझ फेंक कर नाच उठेगा इसका उत्तर सब जानते हैं। उसकी इच्छा अर्थ के क्षेत्र में जितनी मुक्त है वह श्रोताओं की इच्छा का उतना ही अधिक बन्दी है।

जिस दरिद्र समाज ने इस व्यावसायिक आस्था के सम्बन्ध म मुझ नास्तिक बना दिया उसे अब तक मेरी ओर से धन्यवाद भी नहीं मिल सका।

जब ठकुरी बाबा और उनके साथी वसन्तपंचमी का स्नान करके चले गए तब जीवन में पहली बार मुझे कोलाहल का अभाव अखरा। तब से अनेक माघमेलों में मैंने उन्हें देखा है। कितनी ही बार नाव पर या तट पर उनकी भगत का आयोजन हुआ, कितनी ही बार उन्होंने खिचड़ी, बाजरे के पुये आदि व्यंजनों से मेरा सत्कार किया, और कितनी ही बार अपने जीवन का आख्यान सुनाया।

मैंने उनसे अधिक सहृदय व्यक्ति कम देखे हैं। यदि यह वृद्ध यहां न होकर हमारे बीच में होता तो कैसा होता, यह प्रश्न भी मेरे मन में अनेक बार उठ चुका है। पर जीवन के अध्ययन ने मुझे बता दिया है कि इन दोनों समाजों का अन्तर मिटा सकना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अन्तर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियां व्यक्तिगत हैं, पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलतायें समष्टिगत हैं पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।

ठकुरी बाबा अपने समाज के प्रतिनिधि हैं, इसी से उनकी सहृदयता वैयक्तिक विचित्रता न होकर ग्रामीण जीवन में व्याप्त सहृदयता को व्यक्त करती है। हमारे समाज में उनकी दो ही स्थितियां सम्भव थीं। यदि उनमें दुर्बलताओं का प्राधान्य होता तो वे इस समाज का प्रतिनिधित्व करते और यदि शक्ति का प्राधान्य होता तो अपवाद की कोटि में आ जाते।

इधर दो वर्ष से ठकुरी बाबा माघमेले में नहीं आ रहे हैं। कभी कभी

इच्छा होती है कि सैदपुर जाकर खोज करूँ, क्योंकि वहाँ से दो मील पर उनका गांव है। उनके कुछ पद मैंने लिख रखे हैं, जिन्हें मैं अन्य ग्रामगीतों के साथ प्रकाशित करने की इच्छा रखती हूँ। यदि ठकुरी बाबा से भेंट हो गई तो यह संग्रह और भी अच्छा हो सकेगा।

'यदि भेंट न हो' यह प्रश्न हृदय के किसी कोने में उठता है अवश्य पर मैं उसे आगे बढ़ने नहीं देती। ठकुरी बाबा जैसे व्यक्ति क्या अपनी धरती का मोह छोड़ सकते हैं!

पिछली बार जब वे आये थे तब कुछ शिथिल जान पड़ते थे। हाथ दृढ़ता के साथ चिकारा थामता था पर उँगलियां तार के साथ कांपती थीं। पैर विश्वास के साथ पृथ्वी पर पड़ते थे पर पिंडलियों की थरथराहट गति को डगमग कर देती थी। कण्ठ में पहले जैसा ही लोच था पर कफ़ की घर्घराहट उसे बेसुरा बनाती रहती थी। आंखों में ममता का वही आलोक था पर समय ने अपनी छाया डाल कर उसे धुंधला कर दिया था। मुख पर वैसी ही उन्मुक्त हँसी का भाव था पर मानो धीरे धीरे साथ छोड़ने वाले दांतों को याद रखने के लिये ओठों ने अपने ऊपर स्मृति की रेखायें खींच ली थीं।

व्यक्ति समय के सामने कितना विवश है! समय को स्वीकृति देने के लिए भी शरीर को कितना मूल्य देना पड़ता है।

तब ठकुरी बाबा की मौसी विदा ले चुकी थीं। उनकी उपस्थिति ठकुरी बाबा के लिए इतनी स्वाभाविक हो गई थी कि अभाव की अस्वाभाविकता ने उन्हें एक दम चकित कर दिया होगा। एक बार भी उनके परिचय की सीमा में आ जाने वाला व्यक्ति ठकुरी बाबा का आत्मीय बन जाता है, तब जो इतने वर्षों तक आत्मीय रहा हो उसके महत्व के सम्बन्ध में क्या कहा जावे। मौसी के अभाव ने ठकुरी बाबा के हृदय में एक और चिन्ता भी जगा दी हो

तो आश्चर्य नहीं। ऐसे ही एक दिन उनका अभाव बेला को सहना पड़ेगा और तब वह किस प्रकार जीवन की व्यवस्था करेगी यह सोचना स्वाभाविक कहा जायगा। पर वे अपनी चिन्ता को व्यक्त कम होने देते थे।

उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उत्तर मिला 'अब चला चली कै बिरिया नियराय आई है बिटिया रानी! पाके पातन की भली चलाई। जौन दिन झरि जांय तौन दिन सही।'

मैंने हँसी में कहा, 'तुम स्वर्ग में कैसे रह सकोगे बाबा! वहां तो न कोई तुम्हारे कूट पद और उलटबांसियां समझेगा और न आल्हा ऊदल की कथा सुनेगा। स्वर्ग के गन्धर्व और अप्सराओं में तुम कुछ न जँचोगे।'

ठकुरी बाबा का मन प्रसन्न हो आया—कहने लगे—'सो तो हमहूँ जानित है बिटिया! हम उहां अस सोर मचाउब कि भगवान जी पुन धरती पै ढनकाय देहैं। हम फिर धान रोपब, कियारी बनाउब, चिकारा बजाउब औ तुम पचै का आल्हा-ऊदल की कथा सुनाउब। सरग हमका ना चही, मुदा हम दूसर नवा सरीर मांगै बरे जाब जरूर। ई ससुर तो बनाय कै जरजर हुइगा—' और वे गा उठे—

चलत प्रान काया काहे रोई राम।

उस कल्पवास की पुनरावृत्ति न हो सकी। सम्भव है वे नया शरीर मांगने चले गए हों। पर धरती से उनका प्रेम इतना सच्चा, जीवन से उनका सम्बन्ध ऐसा अटूट है कि उनका कहीं और रहना सम्भव ही नहीं जान पड़ता। अथर्व के जो गायक अपने आपको धरती का पुत्र कहते थे ठकुरी बाबा उन्हीं के सजातीय कहे जा सकते हैं। इनके लिए जीवन धरती का वरदान, काव्य उसके सौन्दर्य की अनुभूति, प्रेम उसके आकर्षण की गति और शक्ति उसकी प्रेरणा का नाम है। ऐसे व्यक्ति मुक्ति की ऊँची से ऊँची कल्पना को दूब में खिले नीचे से नीचे फूल पर न्योछावर कर दें तो आश्चर्य नहीं।

ठकुरी बाबा की कथा लिखते-लिखते रात ढल गई—जाती हुई चांदनी के पीछे आता हुआ प्रभात का धूमिल आभास ऐसा लगता है मानो उसी की छाया हो।

किसी अलक्ष्य महाकवि के प्रथम जागरण-छन्द के समान पक्षियों का कलरव नींद की निस्तब्धता पर फैल रहा है। रात की गहरी निस्पन्द नींद से जागे हुए वृक्षों के दीर्घ निश्वास के समान समीर बह रही है। और ऐसे समय में मेरी स्मृति ने मुझे भी किसी अतीतकाल के प्रभात में जगा दिया है। जान पड़ता है ठकुरी बाबा गंगा-तट पर बैठ कर तन्मय भाव से प्रभाती गा रहे हैं—'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले।'

अपनी प्रभाती से वे किसे जगाते हैं, यह कहना कठिन है।

मेरी शहराती बरेठिन मुझे जिज्जी कहती है और उसका लड़का दमड़ी पुकारता है मौसी जी।

नागरिक समाज इसे छोटा काम करनेवालों की बड़ी धृष्टता भी कह सकता है पर मुझे कभी ऐसा नहीं लगता। सम्भवतः इसका कारण मेरे संस्कार हों। अपनी और अपने पिता की ग्रामीण ननसाल में मुझे बूढ़ी नाइन को बदामो नानी, बूढ़े बरेठा को ननकू दादा कहकर पुकारना पड़ता था। वहां कोई छोटा से छोटा काम करने वाला भी इतना अभागा नहीं होता कि बड़े काम करने वालों से ऐसे पारिवारिक सम्बोधन न पा सके। इसी विशेषता के कारण वहां नागरिक अर्थ-व्यवसाय की प्रधानता नहीं मिलती।

बरेठा रोकने पर भी हठ करके प्रतिदिन मेरे उतारे हुए फ्रॉक, कुरते आदि बटोर ले जाता और धोकर दूसरे ही सवेरे दे जाता। नाइन नित्य ही तेल उबटन लेकर आ उपस्थित होती और मेरे रोने मचलने पर ध्यान न देकर स्नान-क्रिया के सभी विधान सम्पन्न कर जाती। ग्वालिन मेरे लिए

मक्खन रखकर ही सन्तुष्ट न होती, वरन् मना मना कर मुझे थोड़ा सा खिलाने में भी घंटे बिता देती। मेरे लिए फूलों के गहने, पंखे आदि बना लाने वाली रम्मो मालिन की शिक्षा कितनी सफल हुई है इसका पता तब चलता है जब आज मेरी पुष्प-रचना की प्रशंसा होती है।

एक परिवार की नातिन या पोती होकर मैं सारे गांव की बन बैठती थी। मेरे काम के लिए कुछ लेना तक उन्हें स्वीकार न था। पर मां का नया लहरिया पसन्द आ जाने पर ग्वालिन मुनिया मौसी उनका आंचल पकड़ कर इतना मचलती कि उन्हें उसी समय उतार कर दे देना पड़ता था। मालिन रम्मो बुआ तो लाख की चूड़ियों का डेढ़ रुपये वाला जोड़ बिना पहने मेंहदी पीसने ही न बैठती थी।

मेरे कनछेदन, वर्षगांठ जैसे उत्सवों में बदामो नानी तब तक नाचने के लिए खड़ी ही न होती थी जब तक नानी अपने बक्स से गुलबदन का लँहगा या चिकन के काम का दुप्पट्टा न निकाल देतीं। होली के दिन बाबा की चपकन, खूंटी से उतर कर ननकू दादा के शरीर पर पहुँच गई है, यह तब पता चलता जब वे गांव भर में होली खेल चुकते। परिवार के यह सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या पीढ़ी तक सीमित नहीं थे। दोनों ही पक्षों की कई गत-आगत पीढ़ियां इस स्नेह-सम्बन्ध का निर्वाह कर चुकी हैं और कर रही हैं।

मेरे स्वभाव का यह संस्कार नागरिक जीवन में भी मिट न पाया तो स्वाभाविक ही कहा जायगा। पर इन लोगों ने उसे कैसे भांप लिया यह बताना कठिन है।

एक युग से अधिक समय की अवधि में मेरे पास एक ही परिचारक, एक ही ग्वाला, एक ही धोबी और एक ही तांगेवाला रहा है। परिवर्तन का कारण मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो सकता है इसे न वे जानते हैं न मैं।

दमड़ी की मा तव से मेरे कपड़े धोती आ रही है जब मैं विद्यार्थिनी थी। उसके कई वच्चे मर चुके थे इसी से अपने दुर्ग्रह को धोखा देने के लिए उसने लड़के को, जन्म लेते ही सूप में रखकर एक पड़ोसिन के हाथ एक दमड़ी में बेच दिया। छट्ठी के दिन वह पांच में ख़रीदा गया और इस क्रय-विक्रय को चिरस्मरणीय बनाने के लिए उसकी मां ने पुत्र का नाम दमड़ी लाल रख दिया। अब इसे चाहे ब्रह्मा की भ्रान्ति कहिए चाहे दमड़ी की शक्ति, पर यह सत्य है कि वह मृत्यु की घाटी पार कर आया। दमड़ी अब बड़ा हो गया है—व्याह-गौना भी हो चुका है, पर वह लड़कपन से बाज़ नहीं आता। मेरे आंगन में तनकर बैठता है और चौके में काम करती हुई भक्तिन को पुकार कर कहता है 'भगतिन अम्मा हमहूँ चाय पीए जानित है—मौसी जी के खातिर बनाई होय तो तनिक सी हमहूँ का मिल जाय'।

भक्तिन के गोल नथुने कुछ फैल जाते हैं, भृकुटियां कुछ कुञ्चित हो उठती हैं, माथे पर खिंची रेखायें सिमटने लगती हैं और ओठों के आसपास बिखरी झुर्रियां उलझ जाती है। पर वह उसे चाय देती है अवश्य। हां, यह सत्य है कि गिलास वही ढूंढ़ निकालती है जिसकी मुरादाबादी कलई के भीतर से पीतल झांकने लगी है। चाय मिल जाने पर भी दमड़ी उसका पीछा नहीं छोड़ता। विशेष अनुनय से पूछता है—'का मौसी जी नसता उसता न करिहैं ? होय तो तनिक उहो दै डारो भगतिन अम्मा ! हम ई सब अन्तै कहां पाउब ! रामधई अम्मा ! तुम्हरी बनाई चाय तो हम विना गुड़ मधकर पी सकित है। अस मिठात है तुम्हरे हाथन की चीज, कि अब का बनाई ! अबकै हम तुम्हार धोतिया बगुला के पांख अस उज्जर कर लाउब।

आंगन में गठरी पर बैठकर बिना कलई के मुरादाबादी गिलास में भक्तिन की बनाई हुई चाय पीने वाले साहब को देख कर हँसी रोकना कठिन हो जाता है।

कम कपड़े ले जाने पर धुलाई कम मिलती है, इसी से वे दोनों मेरे साफ़ कपड़े तक गठरी में बांधकर चल देते हैं। 'यह तौलिया तो सवेरे ही निकाली है' कहने पर बेटा उत्तर देता है—'ई छोर तौ माटी मां सौंद गा है मौसी जी ! दुसरी ओर हम चबैना बांध लै जाब।' 'यह धोती तो कल ही पहनी है' कहने पर मां पूछती है—'एक दिन हमहूँ पहिर लेब तौ कौनिउ नागा है जिज्जी ?'

अब मौसी जी करें तो करें क्या ? साफ़ तौलिया में दमड़ी को चबेना बांध कर ले जाना है, धुली धोती उसकी माई को पहनना है पर दाम देना पड़ेगा मौसी जी को।

इस अन्याय के विरुद्ध मुझे कुछ कहना चाहिए, पर अचानक ही मेरे मानसपट पर उदय हो आने वाले दो स्मृति-चित्र, शब्दों को कण्ठ से ओठों तक आने ही नहीं देते। उनकी रेखायें समय ने फीकी कर दी है पर उनमें भरा हुआ विषाद का रंग, न उससे धुल सका है न धूमिल हो सका है।

कभी कभी किसी दृश्य, चित्र या व्यक्ति को देखकर हमें उसका विरोधी दृश्य, चित्र या व्यक्ति स्मरण हो आता है। मुझे भी इन हँसोड़, प्रसन्न और बात बात पर उलझने वाले मा-बेटों को देखकर बिबिया और उसकी माई याद आ जाती है।

अपने जीवनवृत्त के विषय में बिबिया की माई ने कभी कुछ बताया नहीं, किन्तु उसके मुख पर अंकित विवशता की भंगिमा, हाथों पर चोटों के निशान, पैर का अस्वाभाविक लँगड़ापन देखकर अनुमान होता था कि उसका जीवन-पथ सुगम नहीं रहा।

मद्यप और झगड़ालू पति के अत्याचार भी सम्भवत: उसके लिये इतने आवश्यक हो गए थे कि उनके अभाव में उसे इस लोक में रहना पसन्द न आया। मां-बाप के न रहने पर बालिका की स्थिति कुछ अनिश्चित-सी

हो गई। घर में बड़ा भाई कन्हई, भौजाई और दादी थे। दादी बूढ़ी होने के कारण पोती की किसी भी त्रुटि को कभी अक्षम्य मानती थी कभी नगण्य। ननद भौजाई के सम्बन्ध में परम्परागत वैषम्य था और बीच के कई भाई-बहिन मर जाने के कारण सबसे बड़े भाई और सबसे छोटी बहिन में अवस्था का इतना अन्तर था कि वे एक दूसरे के साथी नहीं हो सकते थे।

सम्भवतः सहानुभूति के दो-चार शब्दों के लिए ही बिबिया जब तब मेरे पास आ पहुँचती थी। उसकी मा मुझे दिदिया कहती थी। बेटी मौसी जी कह कर उसी सम्बन्ध का निर्वाह करने लगी।

साधारणतः धोबिनों का रंग सांवला पर मुख की गठन सुडौल होती है। बिबिया ने गेहुँये रंग के साथ यह विशेषता पाई थी। उस पर उसका हँसमुख स्वभाव उसे विशेष आकर्षण दे देता था। छोटे-छोटे सफ़ेद दांतों की बतीसी निकली ही रहती थी। बड़ी आंखों की पुतलियां मानो संसार का कोना कोना देख आने के लिए चञ्चल रहती थीं। सुडौल गठीले शरीर वाली बिबिया को धोबिन समझना कठिन था, पर थी वह धोबिनों में भी सबसे अभागी धोबिन।

ऐसी आकृति के साथ जिस आलस्य या सुकुमारता की कल्पना की जाती है उसका बिबिया में सर्वथा अभाव था। वस्तुतः उसके समान परिश्रमी खोजना कठिन होगा। अपना ही नहीं वह दूसरों का काम करके भी आनन्द का अनुभव करती थी। दादी की मुट्ठी से झाड़ खींचकर वह घर-आंगन बुहार आती, भौजाई के हाथ से लोई छीन कर वह रोटी बनाने बैठ जाती और भाई की उँगलियों से, भारी इस्त्री छुड़ा कर वह स्वयं कपड़ों की तह पर इस्त्री करने लगती। कपड़ों में सज्जी लगाना, भट्ठी चढ़ाना, लादी ले जाना, कपड़े धोना-सुखाना आदि कामों में वह सबके आगे रहती।

केवल उसके स्वभाव में अभिमान की मात्रा इतनी थी कि वह दोष की सीमा तक पहुंच जाती थी। अच्छे कपड़े पहनना उसे अच्छा लगता था

और यह शौक ग्राहकों के कपड़ों से पूरा हो जाता था। गहने भी उसकी मा ने कम नहीं छोड़े थे। विवाह-सम्बन्ध उसके जन्म से पहले ही निश्चित हो गया था। पांचवें वर्ष में व्याह भी हो गया। पर गौने से पहले ही वर की मृत्यु ने उस सम्बन्ध को तोड़कर, जोड़ने वालों का प्रयत्न निष्फल कर दिया। ऐसी परिस्थिति में, जिस प्रकार उच्च वर्ग की स्त्री का गृहस्थी बसा लेना कलंक है उसी प्रकार नीच वर्ग की स्त्री का अकेला रहना सामाजिक अपराध है।

कन्हई यमुना पार देहात में रहता था, पर वहन के लिए उसने इस पार शहर का धोवी ढूंढ़ा। एक शुभ दिन पुराने वर का स्थानापन्न, अपने सम्बन्धियों को लेकर भावी ससुराल पहुँचा। एक वड़े डेग में मांस वना और वड़े कड़ाह में पूरियां छनीं। कई वोतलें ठर्रा शराव आई और तव तक नाच-रंग होता रहा जव तक वराती घराती सव औंधे मुंह न लुढ़क पड़े।

नई ससुराल पहुँच जाने के वाद कई महीने तक विविया नहीं दिखाई दी। मैंने समझा कि नई गृहस्थी वसाने में व्यस्त होगी।

कुछ महीने वाद अचानक एक दिन मैले कुचैले कपड़े पहने हुए विविया आ खड़ी हुई। उसके मुख पर झाईं आ गई थी और शरीर दुर्वल जान पड़ता था। पर न आंखों में विषाद के आंसू थे न ओठों पर सुख की हँसी। न उसकी भाव-भंगिमा में अपराध की स्वीकृति थी और न निरपराधी की न्याय-याचना। एक निर्विकार उपेक्षा ही उसके अंग अंग से प्रकट हो रही थी।

जो कुछ उसने कहा उसका आशय था कि वह मेरे कपड़े धोयेगी और भाई के ओसारे में अलग रोटी वना लिया करेगी। धीरे धीरे पता चला कि उसके घरवाले ने उसे निकाल दिया है। कहता है ऐसी औरत के लिए मेरे घर में जगह नहीं—चाहे भाई के यहां पड़ी रहे चाहे दूसरा घर कर ले।

चरित्र के लिए ही विविया को यह निर्वासन मिला होगा यह सन्देह

स्वाभाविक था। पर मेरा प्रश्न उसकी उदासीनता के कवच को भेद कर मर्म में इस तरह चुभ गया कि वह फफककर रो उठी 'अब आपहु अस सोचै लागीं मौसी जी ! मइया तो सरगै गई अब हमार नइया कसत पार लगी !'

उसका विषाद देखकर ग्लानि हुई। पर उसकी दादी से सब इतिवृत्त जान कर मुझे अपने ऊपर क्रोध ही आया। रमई के घर जाकर बिबिया ने गृहस्थी की व्यवस्था के लिए कम प्रयत्न नहीं किया पर वह था पक्का जुआरी और शराबी। यह अवगुण तो सभी धोबियों में मिलते हैं, पर सीमातीत न होने पर उन्हें स्वाभाविक मान लिया जाता है।

रमई पहले ही दिन बहुत रात गए नशे में धुत घर लौटा। घर में दूसरी स्त्री न होने के कारण नवागत बिबिया को ही रोटी बनानी पड़ी। वह विशेष यत्न से दाल तरकारी बनाकर रोटी सेंकने के लिए आटा साने उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रमई लड़खड़ाता हुआ घुसा और उसे देख ऐसी घृणास्पद बातें बकने लगा कि वह धीरज खो बैठी। एक तो उसके मिज़ाज में वैसे ही तेज़ी अधिक थी दूसरे यह तो अपने घर में अपने पति से मिला अपमान था। [illegible] बलकर कह उठी 'चिल्लू भर पानी मां डूब मरो। ब्याहता मह[illegible] हो जानो बेसत[illegible] के आये होयं—छी-छी।'

फिर यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। शराब के अतिरिक्त उसे जुये का भी शौक था जो शराब की लत से भी बुरा है। शराबी होश में आने पर मनुष्य बन जाता है, पर जुआरी कभी होश में आता ही नहीं, अतः उसके सम्बन्ध में मनुष्य बनने का प्रश्न उठता ही नहीं।

रमई के जुये के साथी अनेक वर्गों से आये थे। कोई काछी था तो कोई मोची, कोई जुलाहा था तो कोई तेली।

हार-जीत की वस्तुयें भी विचित्र होती थीं। कपड़ा, जूता, रुपया, पैसा, बर्तन आदि में से जो हाथ में आया वही दावँ पर रख दिया जाता था। कोई किसी की घरवाली की हँसुली जीत लेता और कोई किसी की पतोहू के झुमके। कोई अपनी बहिन की पहुँची हार जाता था और कोई नातिन के के कड़े। सारांश यह कि जुये के पहले चोरी-डकैती की आवश्यकता भी पड़ जाती थी।

एक बार रमई के जुये के साथी मियां करीम ने गुलाबी आंखें तरेर कर कहा 'अरे दोस्त तुम तो अच्छी छोकरी हथिया लाये हो। उसी को दावँ पर क्यों नहीं रखते ? किस्मतवर होगे तो तुम्हारे सामने रुपये पैसे का ढेर लग जायगा, ढेर!' इस प्रस्ताव का सब ने मुक्तकण्ठ से समर्थन किया। रमई बिबिया को रखने के लिए प्रस्तुत भी हो गया, पर न जाने उसे चिमटा स्मरण हो आया या लुआठी कि वह रुक गया। बहाना बनाया—आज तो रुपया गांठ में है, न होगा तब मेहरारू और किस दिन के लिए होती है!

बिबिया तक यह समाचार पहुँचते देर न लगी। उस जैसी अभिमानिनी स्त्री के लिए यह समाचार पलीते में आग के समान हो गया। दुर्भाग्य से उसने एक दिन करीम मियां को अपने द्वार पर देख लिया। बस फिर क्या था—भीतर से तरकारी काटने का बड़ा चाकू निकालकर और भौंहें टेढ़ी कर उसने उन्हें बता दिया कि रमई के ऐसी हरकत करने पर वह उन दोनों के पेट में यही चाकू भोंक देगी। फिर चाहे उसे कितना ही कठोर दण्ड

स्वाभाविक था। पर मेरा प्रश्न उसकी उदासीनता के कवच को भेद कर मर्म में इस तरह चुभ गया कि वह फफक कर रो उठी 'अब आपहु अस मोसे कहतीं मोसी जी ! भइया तौ मरगे गईं अब हमार नइया कवन पार लगी !'

उसका विवाह देखकर ग्लानि हुई। पर उसकी बातों से सब इतिवृत्त जान कर मुझे अपने ऊपर क्रोध ही आया। रमई के घर आकर बिबिया ने गृहस्थी की व्यवस्था के लिए कम प्रयत्न नहीं किया पर वह था पक्का जुआरी और शराबी। यह अवगुण तो सभी धोबियों में मिलते हैं, पर सीमातीत न होने पर उन्हें स्वाभाविक मान लिया जाता है।

रमई पहले ही दिन बहुत रात गए नशे में धुत घर लौटा। घर में दूसरी स्त्री न होने के कारण नवागत बिबिया को ही रोटी बनानी पड़ी। वह विशेष यत्न से दाल तरकारी बनाकर रोटी सेंकने के लिए आटा साने उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रमई लड़खड़ाता हुआ घुसा और उसे देख ऐसी घृणास्पद बातें बकने लगा कि वह धीरज खो बैठी। एक तो उसके मिजाज में वैसे ही तेजी अधिक थी दूसरे यह तो अपने घर में अपने पति से मिला अपमान था। बस वह जलकर कह उठी 'चिल्लू भर पानी मां डूब मरो। ब्याहता महरारू से अस बतियात हो जानो वेसवा के आये होयं—छी-छी।'

नशे में बेसुध होने पर भी पति ने अपने आपको अपमानित अनुभव किया—दांत निपोर और आंखें चढ़ा कर उसने अवज्ञा से कहा 'ब्याहता ! एक तो भच्छ लिहिन अब दूसर के घर आई हैं सत्ती छीता बनै खातिर—धन भाग—परनाम पांलागी।'

क्रोध न रोक सकने के कारण बिबिया ने चिमटा उठाकर उस पर फेंक दिया। बचने के प्रयास में वह लटपटाकर औंधे मुंह गिर पड़ा और पत्नी ने भीतर की अंधेरी कोठरी में घुस कर द्वार बन्द कर लिया। सबेरे जब वह बाहर निकली तब घरवाला बाहर जा चुका था।

फिर यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। शराब के अतिरिक्त उसे जुये का भी शौक था जो शराब की लत से भी बुरा है। शराबी होश में आने पर मनुष्य बन जाता है, पर जुआरी कभी होश में आता ही नहीं, अतः उसके सम्बन्ध में मनुष्य बनने का प्रश्न उठता ही नहीं।

रमई के जुये के साथी अनेक वर्गों से आये थे। कोई काछी था तो कोई मोची, कोई जुलाहा था तो कोई तेली।

हार-जीत की वस्तुयें भी विचित्र होती थीं। कपड़ा, जूता, रुपया, पैसा, बर्तन आदि में से जो हाथ में आया वही दावँ पर रख दिया जाता था। कोई किसी की घरवाली की हँसुली जीत लेता और कोई किसी की पतोहू के झुमके। कोई अपनी बहिन की पहुँची हार जाता था और कोई नातिन के के कड़े। सारांश यह कि जुये के पहले चोरी-डकैती की आवश्यकता भी पड़ जाती थी।

एक बार रमई के जुये के साथी मियां करीम ने गुलाबी आंखें तरेर कर कहा 'अरे दोस्त तुम तो अच्छी छोकरी हथिया लाये हो। उसी को दावँ पर क्यों नहीं रखते ? किस्मतवर होगे तो तुम्हारे सामने रुपये पैसे का ढेर लग जायगा, ढेर!' इस प्रस्ताव का सब ने मुक्तकण्ठ से समर्थन किया। रमई बिबिया को रखने के लिए प्रस्तुत भी हो गया, पर न जाने उसे चिमटा स्मरण हो आया या लुआठी कि वह रुक गया। बहाना बनाया—आज तो रुपया गांठ में है, न होगा तब मेहरारू और किस दिन के लिए होती है!

बिबिया तक यह समाचार पहुँचते देर न लगी। उस जैसी अभिमानिनी स्त्री के लिए यह समाचार पलीते में आग के समान हो गया। दुर्भाग्य से उसने एक दिन करीम मियां को अपने द्वार पर देख लिया। बस फिर क्या था—भीतर से तरकारी काटने का बड़ा चाकू निकालकर और भौहें टेढ़ी कर उसने उन्हें बता दिया कि रमई के ऐसी हरकत करने पर वह उन दोनों के पेट में यही चाकू भोंक देगी। फिर चाहे उसे कितना ही कठोर दण्ड

सजा न मिले, पर वह ऐसा करेगी अवश्य। यह ऐसी गाय बछिया नहीं है जिसे चाहे कसाई के हाथ बेच दिया जावे, चाहे वैतरणी पार उतरने के लिए महाब्राह्मण को दान कर दिया जावे।

करीम मियां तो नरम रह गए। पर दूसरे दिन जुए के साथियों के सामने उन्होंने रमई से कहा 'लाहौलबिल्ला कूवत, शरीफ़ आदमी के घर ऐसी औरत। मुई चिल्लोनिन की तरह बात बात पर छुरा चाकू दिखाती है। किसी दिन वह तुम पर भी वार करेगी बच्चू! सँभले रहना। घर में कज़ा को बैठा कर चैन की नींद ले रहे हो।'

लखना अहीर सिर हिला हिला कर गम्भीर भाव से बोला 'मेहररुअन अब मनसेधुअन का मारे बरे घुमती हैं राम राम। अब जानौ कलजुग परगट दिखाय लागा।' मँहगू काछी शास्त्रज्ञान का परिचय देने लगा 'ऊ देखौ छीता रानी कस रहीं। उइ निकार दिहिन तऊ न बोलीं। बिचरिउ बेटवन का लै के झारखंड मां परी रहीं।' खिलावन तेली ने समर्थन किया 'उहै तौ सत्ती सतवन्ती कही गई हैं! उनके बरे तौ धरती माता फाटि जाती रहीं। ई सब का खाय कै सत्ती हुइहैं!'

रमई बेचारा कुछ बोल ही न सका। उसकी पत्नी की गणना सतियों में नहीं हो सकती यह क्या कुछ कम लज्जा की बात थी। इस लज्जा और ग्लानि का भार वह उठा भी लेता, पर रात-दिन भय की छाया में रहना तो दुर्वह था। जो स्त्री चाकू निकालते हुए नहीं डरती वह क्या उसके उपयोग में डरेगी। रमई बेचारा सचमुच इतना डर गया कि पत्नी की छाया से बचने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन बीते। पर अन्त में रमई ने साफ़ साफ़ कह दिया कि वह बिबिया को घर में नहीं रखेगा। पंच परमेश्वर भी उसी के पक्ष में हो गए, क्योंकि वे सभी रमई के समानधर्मी थे। यदि उनके घर में ऐसी

विकट स्त्री होती जिसके सामने न शराब पीकर आ सकते थे न जुआ खेलकर तो उन्हें भी यही करना पड़ता।

निरुपाय बिबिया घर लौट आई और सदा के समान रहने लगी। भौजाई के व्यंग उसे चुभते नहीं थे यह कहना मिथ्या होगा, पर दादी के आंचल में आंसू पोंछने भर के लिए स्थान था। वह पहले से चौगुना काम करती। सबसे पहले उठती और सबके सो जाने पर सोती। न अच्छे कपड़े पहनती न गहने। न गाती बजाती, न किसी नाच-रंग में शामिल होती। पति के अपमान ने उसे मर्माहत कर दिया था, पर जात-बिरादरी में फैली बदनामी उसका जीना ही मुश्किल किये दे रही थी। ऐसी सुन्दर और मेहनती स्त्री को छोड़ना सहज नहीं है इसी से सब ने अनुमान लगा लिया कि उसमें गुणों से भारी कोई दोष होगा।

कन्हई ने एक बार फिर उसका घर बसा देने का प्रयत्न किया।

इस बार उसने निकटवर्ती गांव में रहने वाले एक विधुर अधेड़ और पांच बच्चों के बाप को बहनोई पद के लिए चुना।

पर बिबिया ने बड़ा कोलाहल मचाया। कई दिन अनशन किया, कई घंटे रोती रही। 'दादा अब हम न जाब। चाहे मूड़ फोरि कै मर जाब मुदा माई बाबा कर देहरिया न छांड़ब' आदि आदि कहकर उसने कन्हई को निश्चय से विचलित करना चाहा, पर उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गए। भाई के विचार में युवती बहिन को घर में रखना आपत्ति मोल लेना था। कहीं उसका पैर ऊँचे-नीचे पड़ गया तो भाई का हुक्का-पानी बन्द हो जाना स्वाभाविक था। उसके पास इतना रुपया भी नहीं था जिससे पंचदेवताओं की पेटपूजा करके जात-बिरादरी में मिल सके।

अन्त में बिबिया की स्वीकृति उदासीनता के रूप में प्रकट हुई। किसी ने उसे गुलाबी धोती पहना दी, किसी ने आंखों में काजल की

रेखा खींच दी और किसी ने परलोकवासिनी सपत्नी के कड़े-पछेली से हाथ-पाँव सजा दिये। इस प्रकार बिबिया ने फिर ससुराल की ओर प्रस्थान किया।

जब एक वर्ष तक मुझे उसका कोई समाचार न मिला तब मैंने आश्वस्त होकर सोचा कि वह जंगली लड़की अब पालतू हो गई।

मैं ही नहीं उसके भाई, भौजाई, दादी आदि सम्बन्धी भी जब कुछ निश्चिन्त हो चुके तब एक दिन अचानक सुना कि वह फिर नैहर लौट आई है। इतना ही नहीं इस बार उसके कलंक की कालिमा और अधिक गहरी हो गई थी। पर मेरे पास वह कुछ कहने सुनने नहीं आई। पता चला वह न घर का ही कोई काम करती थी और न बाहर ही निकलती। घर की उसी अँधेरी कोठरी में जिसके एक कोने में गधे के लिए घास भरी थी और दूसरे में ईंधन-कोयले का ढेर लगा था वह मुंह लपेटे पड़ी रहती थी। बहुत कहने सुनने पर दो कौर खा लेती, नहीं तो उसे खाने-पीने की भी चिन्ता नहीं रहती।

यह सब सुनकर चिन्तित होना स्वाभाविक ही कहा जायगा। मन के किसी अज्ञात कोने से बार बार सन्देह का एक छोटा सा मेघ-खण्ड उठता था और धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते विश्वास की सब रेखाओं पर फैल जाता था। बिबिया क्या वास्तव में चरित्रहीन है ? यदि नहीं तो वह किसी घर में आदर का स्थान क्यों नहीं बना पाती ? उससे रूप-गुण में बहुत तुच्छ लड़कियां भी अपना अपना संसार बसाये बैठी हैं। इस अभागी में ही ऐसा कौन सा दोष है जिसके कारण इसे कहीं हाथ भर जगह तक नहीं मिल सकती ?

इसी तर्क-वितर्क के बीच में बिबिया की दादी आ पहुँची और धुंधली आंखों को फटे आंचल के कोने से रगड़ रगड़ कर पोती के दुर्भाग्य की कथा सुना गई।

बिबिया के नवीन पति की दो पत्नियाँ मर चुकी थीं। पहली अपनी स्मृति के रूप में एक पुत्र छोड़ गई थी जो नई विमाता के बराबर या उससे चार छः मास बड़ा ही होगा। दूसरी की धरोहर तीन लड़कियाँ हैं जिनमें बड़ी नौ वर्ष की और सबसे छोटी तीन वर्ष की होगी।

झनकू ने छोटे बच्चों के लिए ही तीसरी बार घर बनाया था। वधू के प्रति भी उसका कोई विशेष अनुराग है यह उसके व्यवहार से प्रकट नहीं होता था। वह सवेरे ही लादी लेकर और रोटी बांध कर घाट चला जाता और सन्ध्या समय लौटता। फिर शाम को गठरी उतार कर और गधे को चरने के लिए छोड़ कर जो घर से निकलता तो ग्यारह बजे से पहले लौटने का नाम न लेता।

सुना जाता था कि उसका अधिकांश समय उसी पासी-परिवार में बीतता है जिसके साथ उसकी घनिष्टता के सम्बन्ध में विविध मत थे। जाति-भेद के कारण वह उस परिवार के साथ किसी स्थायी सम्बन्ध में नहीं बँध सका था और अपनी अभियोगहीन पत्नियों और अपने अच्छे स्वभाव के कारण पंच-परमेश्वर के दण्ड विधान की सीमा से बाहर रह गया था।

पासी शहर में किसी सम्पन्न गृहस्थ का साईस हो गया था। पर उसकी घरवाली के हृदय में सास-ससुर के घर के प्रति अचानक ऐसी ममता उमड़ आई कि वह उस देहली को छोड़ कर जाना अधर्म की पराकाष्ठा मानने लगी।

झनकू को अपने लिए न सही, पर अपनी सन्तान की देख-रेख के लिए तो एक सजातीय गृहिणी की आवश्यकता थी ही, किन्तु कोई धोबिन उसकी संगिनी बनने का साहस न कर सकी। रजक-समाज में बिबिया की स्थिति कुछ भिन्न थी। वह बेचारी अपकीर्ति के समुद्र में इस तरह आकण्ठ मग्न थी कि झनकू का प्रस्ताव भी उसके लिए जहाज बन गया।

इस प्रकार अपने मन को मुक्त रखकर भी झनकू बिबिया को दाम्पत्य-बन्धन में बांध लाया। यह सत्य है कि वह नई पत्नी को कोई कष्ट नहीं देता था। उसे घाट ले जाना तक झनकू को पसन्द नहीं था, इसीसे कूटना, पीसना, रोटी-पानी, बच्चों की देख-भाल में ही गृहिणी के कौशल की परीक्षा होने लगी।

बिबिया पति के उदासीन आदर भाव से प्रसन्न थी या अप्रसन्न यह कोई कभी न जान सका, क्योंकि उसने घर और बच्चों में तनमन से रम कर अन्य किसी भाव के आने का मार्ग ही बन्द कर दिया था।

सवेरे से आधी रात तक वह काम में जुटी रहती। फिर छोटी बालिकाओं में से एक को दाहिनी और दूसरी को बाईं ओर लिटा कर टूटी खटिया पर पड़ते ही संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाती। सवेरा होने पर कर्तव्य की पुरानी पुस्तक का नया पृष्ठ खुला ही रहता था।

कच्चे घर में दो कोठरियां थीं जिनके द्वार ओसारे में खुलते थे। इन कोठरियों को भीतर से मिलाने वाला द्वार कपाटहीन था। झनकू एक कोठरी में ताला लगा जाता था जिससे रात में विना किसी को जगाये भीतर आ सके।

पत्नी उसके लिए रोटियां रखकर सो जाती थी। भूखा लौटने पर वह खा लेता था, अन्यथा उन्हीं को बांध कर सवेरे घाट की ओर चल देता था।

बिबिया के स्नेह के भूखे हृदय ने मानो अवोध बालकों की ममता से अपने आपको भर लिया था। नहलाना, चोटी करना, खिलाना, सुलाना आदि बच्चों के कार्य वह इतने स्नेह और यत्न से करती थी कि अपरिचित व्यक्ति उसे माता ही नहीं परम ममतामयी माता समझ लेता।

सन्तान के पालन की सुचारु व्यवस्था देखकर झनकू घर की ओर से

और भी अधिक निश्चिन्त हो गया। नाक के पट्टे गायब न होने देने में उसे जितनी चिन्ता थी उतनी पत्नी के जीवन की रक्षा करने में नहीं।

यह क्रम भी बुरा नहीं था कि यदि उनका बड़ा लड़का ननसार से लौट न आता। मा के अभाव और पिता के उदासीन भाव के कारण वह एक प्रकार से आवारा हो गया था। तेल लगाना, कान में इत्र का फाहा खोंसना, तीतर लिए घूमना, कुश्ती लड़ना आदि उसके स्वभाव की ऐसी विचित्रतायें थीं जो रजक-समाज में नहीं मिलतीं।

धोबी, जुआ खेलकर या शराब पीकर भी, न भले आदमी की परिभाषा के बाहर जाता है और न अकर्मण्यता या आलस्य को अपनाता है। उसे आजीविका के लिए जो कार्य करना पड़ता है उसमें आलस्य या बेईमानी के लिए स्थान नहीं रहता। मजदूर, मजदूरी के समय में से कुछ क्षणों का अपव्यय करके या खराब काम करके बच सकता है पर धोबी ऐसा नहीं कर पाता।

उसे ग्राहक को कपड़े ठीक संख्या में लौटाने होंगे, उजले धोने में पूरा परिश्रम करना पड़ेगा, कलफ़-इस्त्री में औचित्य का प्रश्न न भूलना होगा। यदि वह इन सब कामों के लिए आवश्यक समय का अपव्यय करने लगे तो महीने में चार खेप न दे सकेगा और परिणामतः जीविका की समस्या उग्र हो उठेगी। सम्भवतः इसीसे कर्मतत्परता ऐसी सामान्य विशेषता है जो सब प्रकार के भले बुरे धोबियों में मिलती है। उसकी मात्रा में अन्तर हो सकता है पर उसका नितान्त अभाव अपवाद है।

झनकू का लड़का भीखन ऐसा ही अपवाद था। पिता ने प्रयत्न करके एक गरीब धोबिन की बालिका से उसका गठबन्धन कर दिया था, किन्तु जामाता को सुधरते न देख उसने अपनी कन्या के लिए दूसरा कर्मठ पति खोज कर उसी के साथ गौने की प्रथा पूरी कर दी। इस प्रकार भीखन

गृहस्थ भी न बन सका, सद्गृहस्थ बनने की बात तो दूर रही। पिता स्वयं ऐसी स्थिति में नहीं था कि पुत्र को उपदेश दे सकता, पर अन्त में उसके व्यवहार से थककर उसने उसे निर्वासन का दण्ड दे डाला।

इस प्रकार विमाता के आने के समय वह नाना-नानी के घर रहकर तीतर लड़ाने और पतंग उड़ाने में विशेषज्ञता प्राप्त कर रहा था। पिता ने उसे नहीं बुलाया पर विमाता की उपस्थिति ने उसे लौटने के लिए आकुल कर दिया।

एक दिन उसने डोरिये का कुरता और नासूनी किनारे की धोती पहन कर बड़े यत्न से बुलबुलीदार बाल सँवारे। तब एक हाथ में तीतर का पिंजड़ा और दूसरे में, बहिनों के लिए खरीदी हुई लइयाकरारी की पोटली लिए हुए वह द्वार पर आ खड़ा हुआ। पिता घर नहीं था, पर विमाता ने सौतेले बेटे के स्वागत-सत्कार में त्रुटि नहीं होने दी। लोटे भर पानी में खांड घोलकर उसे शर्बत पिलाया, दाल के साथ बैंगन का भर्त्ता बनाकर रोटी खिलाई और दूसरी कोठरी में खटिया बिछाकर उसके विश्राम की व्यवस्था कर दी।

पिता पुत्र का साक्षात स्नेह-मिलन नहीं हो सका, क्योंकि एक ओर अनिश्चित आशंका थी और दूसरी ओर निश्चित अवज्ञा।

झनकू ने उसे स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि भलेमानस के समान न रहने पर वह उसे तुरन्त निकाल बाहर करेगा। भीखन ने ओठ बिचका, आंख मिचका और अवज्ञा से मुख फेरकर पिता का आदेश सुन लिया, पर भलेमानस बनने के सम्बन्ध में अपनी कोई स्वीकृति नहीं दी।

चरित्रहीन व्यक्ति दूसरों पर जितना सन्देह करता है उतना सचरित्र नहीं। झनकू भी इसका अपवाद नहीं था। अब तक जिस पत्नी के लिए उसने रत्ती भर चिन्ता का कष्ट नहीं उठाया उसी की पहरेदारी का पहाड़ सा भार वह सुख से ढोने लगा।

समय पर घर लौट आता, पुत्र पर कड़ी दृष्टि रखता और पत्नी के व्यवहार में परिवर्तन खोजता रहता। पर पिता की सतर्कता की उपेक्षा करके पुत्र विमाता के आसपास मंडराता रहता। जहां वह बर्तन मांजती वहीं पर तीतर चुगाने बैठ जाता। जब वह कपड़े सुखाती तभी बाहर नंगे बदन बैठकर मांसल हाथ पैरों में तेल मलता। जिस समय वह पानी का घड़ा भरकर लौटती उसी समय वह महुये के छतनार वृक्ष की ओट में छिपकर गाता 'धीरे चलो गगरि छलक ना जाय'।

एक दिन रोटी खाते समय उसकी सरलता इस सीमा तक पहुंच गई कि विमाता जलती लुआठी चूल्हे से खींचकर बोली 'हम तोहार बाप कर मेहरारू अही। अब भाखा कुभाखा सुनब तो तोहार पिठिया के चमड़ी न बची।'

विमाता के इस अभूतपूर्व व्यवहार से पुत्र लज्जित न होकर क्रुद्ध हो उठा। इस प्रकार के पुरुषों को अपनी नारी-मोहिनी विद्या का बड़ा गर्व रहता है। किसी स्त्री पर उस विद्या का प्रभाव न देखकर उनके दम्भ को ऐसा आघात पहुँचता है कि वे कठोर प्रतिशोध लेने में भी नहीं हिचकते।

विमाता के उपदेश की प्रतिक्रिया ने एक अकारण द्वेष को अंकुरित करके उसे पनपने की सुविधा दे डाली।

जहां तक बिबिया का प्रश्न था वह पति के व्यवहार से विशेष सन्तुष्ट न होने पर भी उससे रुष्ट नहीं थी। अभिमानी व्यक्ति अवज्ञा के साथ मिले हुए अधिक स्नेह का तिरस्कार करके वीतरागता के साथ आदरभाव को स्वीकार कर लेता है। झनकू ने पत्नी में अनुराग न रखने पर भी अन्य धोबियों के समान उसका अनादर नहीं किया। यह विशेषता बिबिया जैसी स्त्री के लिए स्नेह से अधिक मूल्य रखती थी, इसीसे वह रोम् रोम से कृतज्ञ हो उठी। उसके क्रूर अदृष्ट ने यदि परिहास में 'यह सौतेला पुत्र न भेज दिया होता तो

वह उसी घर में सन्तोष के साथ शेष जीवन बिता देती, पर उसके लिए इतना सुख भी दुर्लभ हो गया।

भीखन के व्यवहार में अब विमाता के प्रति ऐसा कृत्रिम घनिष्ट भाव व्यक्त होने लगा कि वह आतंकित हो उठी। घर की शान्ति न भंग करने के विचार से ही उसने गृहस्वामी के निकट कोई अभियोग नहीं उपस्थित किया, पर अपने मौन के कठोर परिणाम तक उसकी दृष्टि नहीं पहुँच सकी।

पुत्र दूसरों के सामने विमाता की चर्चा चलते ही एक विचित्र लज्जा और मुग्धता का अभिनय करने लगा और उसके साथी उनदोनों के सम्बन्ध में दन्तकथायें फैलाने लगे। घरों में धोबिनें, बिबिया के छलछन्द की नीचता और अपने पातिव्रत की उच्चता पर टीका-टिप्पणी करके पतियों से हँसली कड़े के रूप में सदाचार के प्रमाणपत्र मांगने लगीं। घाट पर झनकू की श्रवणसीमा में बैठकर धोबी अपने आपको त्रियाचरित्र का ज्ञाता प्रमाणित करने लगे।

पत्नी के अनाचार और अपनी कायरता का ढिंढोरा पिटने देखकर झनकू का धैर्य सीमा तक पहुँच गया तो आश्चर्य नहीं। एक दिन जब वह घाट से भरा हुआ लौटा आ रहा था तब मार्ग में लड़का मिल गया। बस झनकू ने आव देखा न ताव—गधा हांकने की लकड़ी से ही वह उसकी मरम्मत करने लगा।

पुत्र ने सारा दोष विमाता पर डालकर अपनी विवशता का रोना रोया और अपने दुष्कृत्य पर लज्जित होने का स्वांग रचा। इस प्रकार भीखन का प्रतिशोध-अनुष्ठान पूरा हुआ।

झनकू यदि चाहता तो पत्नी से उत्तर मांग सकता था, पर उसे उसके दोष इतने स्पष्ट दिखाई देने लगे कि उसने इस शिष्टाचार की आवश्यकता ही नहीं समझी। बिबिया ने एक बार भी गहने कपड़े के लिए हठ नहीं किया, वह एक दिन भी पति की स्नेहपात्री को द्वंदयुद्ध के लिए ललकारने

नहीं गई और वह कभी पति की उदासीनता का विरोध करने के लिए कोप-भवन में नहीं बैठी। इन त्रुटियों से प्रमाणित हो जाता था कि वह पति में अनुराग नहीं रखती और जो अनुरक्त नहीं वह विरक्त माना जायगा। फिर जो एक ओर विरक्त है उसके, किसी दूसरे ओर अनुरक्त होने को लोग अनिवार्य समझ बैठते हैं। इस तर्क-क्रम से जो दोषी प्रमाणित हो चुका हो उसे सफ़ाई देने का अवसर देना पुरस्कृत करना है। उसके लिए सबसे [illegible] चेतावनी दण्ड-प्रयोग ही हो सकता है।

उस रात प्रथम बार बिबिया पीटी गई। लात, घूंसा, थप्पड़, लाठी, आदि का सुविधानुसार प्रयोग किया गया, पर अपराधिनी ने न दोष स्वीकार किया, न क्षमा मांगी और न रोई चिल्लाई। इच्छा होने पर बिबिया लात-घूसे का उत्तर बेलन-चिमटे से देने का सामर्थ्य रखती थी, पर वह झनकू का इतना आदर करने लगी थी कि उसका हाथ न उठ सका।

पत्नी के मौन को भी झनकू ने अपराधों की सूची में रख लिया और मारते मारते थक जाने पर उसे ओसारे में ढकेल और किवाड़ बन्द कर वह हांफता हुआ खाट पर पड़ रहा।

बिबिया के शरीर पर घूंसों के भारीपन के स्मारक गुम्मड़ उभर आये थे, लकड़ी के आघातों की संख्या बतानेवाली नीली रेखायें खिंच गई थीं और लातों की सीमा नापनेवाली पीड़ा जोड़ों में फैल रही थी। उस पर द्वार का बन्द हो जाना उसके लिए क्षमा की परिधि से निर्वासित हो जाना था। वह अन्धकार में अदृष्ट की रेखा जैसी पगडंडी पर गिरती पड़ती, रोती कराहती अपने नैहर की ओर चल पड़ी।

झनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिए कभी एक पंच-देवता भी आविर्भूत नहीं हुए पर बिबिया को कर्तव्यच्युत होने का दण्ड देने के लिए उनकी पंचायत बैठी।

वह उसी घर में सन्तोष के साथ शेष जीवन बिता देती, पर उसके लिए इतना सुख भी दुर्लभ हो गया।

भीखन के व्यवहार में अब विमाता के प्रति ऐसा कृत्रिम घनिष्ट भाव व्यक्त होने लगा कि वह आतंकित हो उठी। घर की शान्ति न भंग करने के विचार से ही उसने गृहस्वामी के निकट कोई अभियोग नहीं उपस्थित किया, पर अपने मौन के कठोर परिणाम तक उसकी दृष्टि नहीं पहुँच सकी।

पुत्र दूसरों के सामने विमाता की चर्चा चलते ही एक विचित्र लज्जा और मुग्धता का अभिनय करने लगा और उसके साथी उनदोनों के सम्बन्ध में दन्तकथायें फैलाने लगे। घरों में धोबिनें, बिबिया के छलछन्द की नीचता और अपने पातिव्रत की उच्चता पर टीका-टिप्पणी करके पतियों से हँसली कड़े के रूप में सदाचार के प्रमाणपत्र मांगने लगीं। घाट पर झनकू की श्रवणसीमा में बैठकर धोबी अपने आपको त्रियाचरित्र का ज्ञाता प्रमाणित करने लगे।

पत्नी के अनाचार और अपनी कायरता का ढिंढोरा पिटने देखकर झनकू का धैर्य सीमा तक पहुँच गया तो आश्चर्य नहीं। एक दिन जब वह घाट से भरा हुआ लौटा आ रहा था तब मार्ग में लड़का मिल गया। बस झनकू ने आव देखा न ताव—गधा हांकने की लकड़ी से ही वह उसकी मरम्मत करने लगा।

पुत्र ने सारा दोष विमाता पर डालकर अपनी विवशता का रोना रोया और अपने दुष्कृत्य पर लज्जित होने का स्वांग रचा। इस प्रकार भीखन का प्रतिशोध-अनुष्ठान पूरा हुआ।

झनकू यदि चाहता तो पत्नी से उत्तर मांग सकता था, पर उसे उसके दोष इतने स्पष्ट दिखाई देने लगे कि उसने इस शिष्टाचार की आवश्यकता ही नहीं समझी। बिबिया ने एक बार भी गहने कपड़े के लिए हठ नहीं किया, वह एक दिन भी पति की स्नेहपात्री को द्वंदयुद्ध के लिए ललकारने

नहीं गई और वह कभी पति की उदासीनता का विरोध करने के लिए भोजन-भवन में नहीं बैठी। इन त्रुटियों से प्रमाणित हो जाता था कि वह पति में अनुराग नहीं रखती और जो अनुरक्त नहीं वह विरक्त माना जायगा। फिर जो एक ओर विरक्त है उसके, किसी दूसरे ओर अनुरक्त होने की बात अनिवार्य समझ बैठते हैं। इस तर्क-क्रम से जो दोषी प्रमाणित हो चुका हो उसे सफ़ाई देने का अवसर देना पुरुषत्व-हनन करना है। उसके लिए सबसे उत्तम चेतावनी दण्ड-प्रयोग ही हो सकता है।

उस रात प्रथम बार बिबिया पीटी गई। लात, घूंसा, थप्पड़, लाठी, आदि का सुविधानुसार प्रयोग किया गया, पर अपराधिनी ने न दोष स्वीकार किया, न क्षमा मांगी और न रोई चिल्लाई। इच्छा होने पर बिबिया लात-घूंसे का उत्तर बेलन-चिमटे से देने का सामर्थ्य रखती थी, पर वह झनकू का इतना आदर करने लगी थी कि उसका हाथ न उठ सका।

पत्नी के मौन को भी झनकू ने अपराधों की सूची में रख लिया और मारते मारते थक जाने पर उसे ओसारे में ढकेल और किवाड़ बन्द कर वह हांफता हुआ खाट पर पड़ रहा।

बिबिया के शरीर पर घूंसों के भारीपन के स्मारक गुम्मड़ उभर आये थे, लकड़ी के आघातों की संख्या बतानेवाली नीली रेखायें खिंच गई थीं और लातों की सीमा नापनेवाली पीड़ा जोड़ों में फैल रही थी। उस पर द्वार का बन्द हो जाना उसके लिए क्षमा की परिधि से निर्वासित हो जाना था। वह अन्धकार में अदृष्ट की रेखा जैसी पगडंडी पर गिरती पड़ती, रोती कराहती अपने नैहर की ओर चल पड़ी।

झनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिए कभी एक पंच-देवता भी आविर्भूत नहीं हुए पर बिबिया को कर्तव्यच्युत होने का दण्ड देने के लिए उनकी पंचायत बैठी।

भीखन ने विमाता के प्रलोभनों की शक्ति और अपनी अबोध दुर्बलता की कल्पित कहानी दोहरा कर क्षमा मांगी। इस क्षमा-याचना में जो कोर कसर रह गई उसे उसके मामा, नाना आदि के रुपयों ने पूरा कर दिया।

दूसरे की दुर्बलता के प्रति मनुष्य का ऐसा स्वाभाविक आकर्षण है कि वह सच्चरित्र की त्रुटियों के लिए दुश्चरित्र को भी प्रमाण मान लेता है! चोर ईमानदारी का उपयोग नहीं जानता, झूठा सत्य के प्रयोग से अनभिज्ञ रहता है। किसी गुण से अनभिज्ञ या उसके सम्बन्ध में अनास्थावान मनुष्य यदि उस विशेषता से युक्त व्यक्ति का विश्वास न करे तो स्वाभाविक ही है। पर उसकी भ्रान्त धारणा भी प्रायः समाज में प्रमाण मान ली जाती है, क्योंकि मनुष्य किसी को दोषरहित नहीं स्वीकार करना चाहता और दोषों के अथक अन्वेषक दोषयुक्तों की श्रेणी में ही मिलते हैं।

बिबिया पर लाञ्छन लगानेवाले भीखन के आचरण के सम्बन्ध में किसी को भ्रम नहीं था, पर बिबिया के आचरण में त्रुटि खोजने के लिए उसकी स्वीकारोक्ति को सत्य मानना अनिवार्य हो उठा। वह अपने अभियोग की सफाई देने के लिए नहीं पहुँच सकी। पहुँचने पर उस क्रुद्ध सिंहनी से पंचदेवताओं को कैसा पुजापा प्राप्त होता इसका अनुमान सहज है।

बिबिया की दादी मर चुकी थी, पर भाई चिर दुःखनी बहिन को घर से निकाल देने का साहस न कर सका इसी से बिरादरी में उसका हुक्का-पानी बन्द हो गया।

इसी बीच ज्वर के कारण मुझे पहाड़ जाना पड़ा। जब कुछ स्वस्थ होकर लौटी तब बिबिया की खोज की। पता चला कि वह न जाने कहां चली गई और बहिन की कलंक कालिमा से लज्जित भाई ने परतावगढ़ जिले में जाकर अपने ससुर के यहां आश्रय लिया। बहिन से छुटकारा पाकर कन्हई

खिन्न हुआ या नहीं उसे कोई नहीं जान सका, पर [illegible]
वह बिरादरी में बैठने का सुख पा सका इसे सब जानते हैं।

गांव के रजक-समाज ने बिबिया के आचरण में [illegible] नहीं था। कुछ उसके अनाचार में विश्वास रखने के कारण उसके प्रति कठोर थे और कुछ उसकी भूलों को भाग्य का अमिट विधान मानकर सहानुभूति के कारण उदार थे। एक वृद्धा ने बताया कि भाई का हुक्का-पानी बन्द होने पर वह बहुत खिन्न हुई। फिर बिरादरी में मिलने के लिए दो सौ रुपये खर्च करने पड़ते, पर इतना तो कन्हई जन्म भर कमा कर भी नहीं जोड़ सकता था।

इन्हीं कष्ट के दिनों में भतीजे ने जन्म लिया। भौजाई वैसे ही स्वतः से प्रसन्न नहीं रहती थी। अब तो उसे सुना सुनाकर अपने दुर्भाग्य और पति की मन्द बुद्धि पर खीझने लगी। 'कया हमरेउ फूटे करम रहा 'पहिल पहिलौठी सन्तान का उछाह लिखा है? हम कौन गहरी गंगा मा जौ बोवा है जौन आज चार जात-बिरादर दुआरे मुह जुठारें? पराये पाप बरे हमार घर उजड़िगा। जिनकार न घर न दुआर उनका का दुसरन के गिरिस्ती बिगारे का चही? सरमदारन के बरे तो चिल्लू भर पानी बहुत है'।

इस प्रकार की सांकेतिक भाषा में छिपे व्यंग सुनते सुनते एक दिन बिबिया गायब हो गई।

सबको उसके बुरे आचरण पर इतना अडिग विश्वास था कि उन्होंने उसके इस तरह अन्तर्धान हो जाने को भी कलंक मान लिया। वह अच्छी गृहस्थिन नहीं थी, अतः किसी के साथ कहीं चले जाने के अतिरिक्त वह कर ही क्या सकती थी। मरना होता तो पहले पति से परित्यक्त होने पर ही डूब मरती, नहीं तो दूसरे के घर ही फांसी लगा लेती पर निर्दोष भाई के घर आकर और उसकी गृहस्थी को उजाड़ कर वह मर सकती है यह विचार तर्कपूर्ण नहीं था।

डोल नहीं किया। 'कुछ न कर सकी तो मर गई' दूसरों के इसी विजयोद्गार की कल्पना ने उसके पैरों में पत्थर बांध दिये और वह गहराई की ओर बढ़ न सकी।

फिर बिबिया तो विद्रोह की कभी राख न होनेवाली ज्वाला थी। संसार ने उसे अकारण अपमानित किया और वह उसे युद्ध की चुनौती न देकर भाग खड़ी हुई यह कल्पना मात्र उसके आत्मघाती संकल्प को, बरसने से पहले आंधी में पड़े हुए बादल के समान, कही का कहीं पहुँचा सकती थी। पर संघर्ष के लिए उसके सभी अस्त्र टूट चुके थे। मूर्च्छितावस्था में तो पहाड़ सा अडिग साहसी भी कायरता की उपाधि बिना पाये हुए ही संघर्ष से हट सकता है।

संसार ने बिबिया के अन्तर्धान होने का जो कारण खोज लिया वह संसार के ही अनुरूप है। पर मैं उसके निष्कर्ष को निष्कर्ष मानने के लिए बाध्य नहीं।

आज भी जब मेरी नाव, समुद्र का अभिनय करने में बेसुध वर्षा की हरहराती यमुना को पार करने का साहस करती है तब मुझे वह रजक-बालिका याद आये बिना नहीं रहती। एक दिन वर्षा के श्याम मेघांचल की लहराती हुई छाया के नीचे, इसकी उन्मादिनी लहरों में उसने पतवार फेंक कर अपनी जीवन-नइया खोल दी थी।

उस एकाकिनी की वह जर्जर तरी किस अज्ञात तट पर जा लगी यह, कौन बता सकता है?

मैंने स्वयं चाहे कम पत्र लिखे हों पर दूसरों के लिए पत्रलेखन मेरा कर्तव्य-सा बन गया है। क्या अपना देहात और क्या पहाड़ी ग्राम सब जगह मेरी स्थिति अर्जीनवीस जैसी हो जाती है।

कहीं कोई दुःखिनी मा, दूर देश भाग जानेवाले पुत्र को, वात्सल्यभरा उद्गार लिख भेजने के लिए विकल है। कहीं कोई ससुराल की बन्दिनी वहू, भाई को, सावन में आने की स्मृति दिलाने के लिए आतुर है। कभी कोई एकाकिनी गृहणी, दूर देश में नई गृहस्थी बसा लेने वाले सहधर्मी के पास, कुशल क्षेम भर लिख भेजने का अनुरोध पहुँचाना चाहती है। कभी कोई रोगी, अपनी सहोदरता की दोहाई देकर, नगरस्थ मजदूर सहोदर को रुपया भेजने के लिए विवश करने की इच्छा रखता है। कहीं

कोई चाचा रक्त-सम्बन्ध के आधार पर भतीजे से बैल खरीदने में सहायता मांगता है। कहीं कोई बहनोई विवाह सम्बन्ध का उल्लेख कर साले से, रहन रखे खेत छुड़ा देने का अनुरोध करता है।

इस प्रकार पत्र-प्रेषकों के वर्ग में सीमातीत विविधता है। पत्र के विषय इतने भिन्न रहते हैं कि कोई पत्र-लेखन-कला का विशेषज्ञ भी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जायगा। फिर मेरी तो इस कला में उतनी भी गति नहीं जितनी काव्य में एक तुक्कड़ की होती है। पत्र-लेखन-कला में मेरी घोर अपटुता के साथ जब पत्र-प्रेषकों की दुर्बोधता भी मिल जाती है तब तो यह कार्य और भी कठिन हो उठता है।

वे सब एक साथ इतना कह चलते हैं कि न वाक्यों में संगति रहती है न भावों में स्पष्टता। रोकने टोकने पर वे समझते हैं कि लिखनेवाले में क्षमता नहीं, अतः पत्र का कोई परिणाम न निकलेगा।

उनकी अटपटी भाषा और उलझे वाक्यों में खोए इतिवृत्त को क्रमबद्ध करना, उनके अस्पष्ट और मिश्रित भावों के साथ उसकी संगति बैठाना तथा उन्हें पत्र का जामा पहनाना सहज नहीं है।

इतिवृत्त को आधुनिक शैली के अनुसार पत्र की रूप रेखा देना भी कठिन है, क्योंकि पत्र-लेखन के सम्बन्ध में वे ग्रामीण, परम्परा के विशेषज्ञ ही नहीं उसके कट्टर अनुयायी भी हैं।

प्रत्येक पत्र के ऊपर चाहे श्री गणेशाय नमः लिखा जाय चाहे श्रीराम पर इस प्रस्तावना के बिना पत्र पत्रता नहीं प्राप्त कर सकता। जिन्हें उद्देश्य करके पत्र लिखा जाता है वे चाहे दीनता में अतुलनीय हों चाहे कुरूपता में अनुपम, पर वे सब 'सिद्ध श्री सर्वोपमायोग्य' कहकर ही सम्बोधित किये जा सकते हैं।

पत्र के विषय भी लेखक को कम उलझन में नहीं डालते क्योंकि कथा

का एक सूत्र पकड़ते ही अनेक सूत्र हाथ में आ जाते हैं। पत्र-प्रेषक न जाने कितनी अन्तर्कथाओं के साथ अपनी कथा कहना चाहता है। इतना ही नहीं, कथा की अबाधगति से घटनाओं के क्रम का कोई सम्बन्ध नहीं रहता पर अन्तर्कथाएं मुख्य वृत्त से अविच्छिन्न सम्बन्ध में बँधी रहती हैं। किसी को किसी सम्बन्धी से रुपया चाहिए—इस एक बात को वह आपबीती अनेक घटनाओं के साथ ही कह सकता है और जमींदार-महाजन से लेकर घुरहू-मगरू पासी तक सबको अपनी विपन्नावस्था का गवाह बनाकर ही सन्तोष पा सकता है।

ऐसे पत्र-प्रेषक अनेक अतीत घटनाओं का इतना सजीव विवरण देते चलते हैं कि बेचारा पत्र-लेखक विस्मित हो उठता है। वह क्या लिखे और क्या न लिखे, यह निर्णय उस पर नहीं छोड़ा जाता। वह कुछ गड़बड़ी कर भी दे तो अन्त में वे पत्र सुनाने के लिए अनुनय विनय कर कर के उसे और भी अधिक असमञ्जस में डाल देते हैं। जो कुछ वे लिखना चाहते हैं उसकी इतनी मौखिक आवृत्तियां हो चुकती हैं कि वे अपने वक्तव्य के उपेक्षणीय अंश का अभाव भी तुरन्त जान लेते हैं।

कागज में इसे लिखने का स्थान नहीं है, यह कहने पर भी छुटकारा मिलना कठिन है। लेखक के मुख पर अपनी अनुनय भरी दृष्टि स्थापित करके और किसी अक्षरहीन कोने में अपनी टेढ़ी मेढ़ी उंगली रखकर वे उस छूटे हुए विवरण को लिख देने के लिए ऐसा करुण अनुरोध करेंगे जो टाला नहीं जा सकता। मार्जिन या कोनों को खाली छोड़ने के लिए सन्देश का कोई अंश छोड़ देना उनकी दृष्टि में अनुचित है। समूचा कागज जब अक्षरों से लिप पुत जाता है तब वे निरुपाय होकर लिखने का अनुरोध बन्द करते हैं, इससे पहले नहीं।

लिखनेवाले के हृदयगत भाव को समझ लेने की समस्या भी कम

साहु जी के आले में तेल के धब्बों से भरे लिफाफे के स्थान में मेरे बैग से बगले के पंख जैसा उजला लिफाफा निकल आता है। हल्दी की पुड़िया खोलकर निकाले हुए कागज की तुलना में मेरी कापी का कागज बड़ा और स्वच्छ जान पड़ता है। पटवारी की चौपाल के कोने में स्थापित बिना ढक्कन की दावात और काले कलम में वह आकर्षण नहीं जो मेरे चमकीले फाउन्टेन-पैन में मिलना स्वाभाविक है। पिछौरी के कोने में बांध कर लाए हुए मैले सिकुड़नदार टिकट के सामने मेरे टिकट ही अधिक विश्वसनीय जान पड़ते हैं। पत्र-लेखन के ऐसे उत्कृष्ट साधन लेकर बैठे हुए लेखक से जो कुछ नहीं लिखवाता वह अपनी लोकाचार विषयक अनभिज्ञता प्रकट करता है। इसी कारण सभी 'दो आखर' लिख देने के लिए अनुरोध करने लगते हैं।

मुझे इस तरह जंगम पोस्ट आफिस बनने की कौन सी आवश्यकता है? मेरे लिखे पत्र कहीं पहुँच भी सकेंगे या नहीं! क्या मेरा, 'टिकट-लिफाफा-सप्लाई-डिपो' संदिग्ध नहीं है? क्या मेरी यह अर्जीनवीसी निठल्लेपन का प्रमाण नहीं है? यह सब प्रश्न उनके हृदय में एक बार भी नहीं उठे।

परमार्थ की उच्चतम भावना के साथ भी नागरिक जीवन में प्रवेश करने पर व्यक्ति को अविश्वास और सन्देह के अनेक पैने तीरों का लक्ष्य बनना पड़ता है। नागरिक जीवन का अकारण सन्देह, कर्मनिष्ठा को पंगु और उसका लक्ष्यहीन दुराव, जीवन-दर्शन को भ्रान्त कर देता है। इसके विपरीत ग्रामीण जीवन की पुस्तक खुली ही मिलती है। कुछ विषम परिस्थितियां अपवाद हो सकती हैं। पर जहां जीवन कुछ स्वस्थ है वहां एक ग्रामीण का सहयोग-आदान दैन्यरहित होने के कारण सहज है, सहायता का दान गर्वशून्य होने के कारण स्वाभाविक है और विचार-विनिमय अकृत्रिम होने के कारण जीवन के अध्ययन का पूरक है।

एक बार मुझे कुछ लिखते देखकर एक वृद्धा अपने दूर देशी पुत्र को पत्र

लिखाने आ बैठी। फिर दूसरे भी आने लगे और अन्त में यह कार्य मेरे कर्तव्य की सीमा में आ गया। मैं स्वयं अकारण तो क्या सकारण पत्र भी कम लिखती हूँ। इसी से टिकट, लिफाफे, कार्ड आदि का प्रबन्ध करने पर भी यह पत्र-लेखन मुझे मंहगा नहीं पड़ा।

मेरे बैठने के स्थान अनेक हैं। कभी पीपल के तने का सहारा लेकर उसकी ऊँची जड़ों का सिंहासन बनाती हूँ, कभी आम के नीचे सूखी पत्तियों के बिछौने का। कभी किसी के ओसारे में पड़ी खटिया पर आसीन होती हूँ। कभी किसी के आंगन में तुलसीचौरा के सामने चटाई पर। पत्र लिखने का प्रस्ताव सबसे पहले जो करता है उसी की इच्छानुसार शेष को चलना पड़ता है। पत्र लिखवाने वाला निकट बैठता है और सब उससे कुछ हटकर आस-पास। केवल अभिवादन भेजने वाले आते-जाते रहते हैं।

कोई पुर चलाना दूसरे को सौंपकर पालागन लिखाने दौड़ आया। कोई आशीष लिखा देने का स्मरण दिलाकर दांयं चलाने चला गया। कोई अपना सन्देश लिखवाने के लिए, भरा घड़ा सिर पर और रस्सी हाथ में थामे हुए ही रुक गई। किसी को जैराम जी लिखवाते लिखवाते बेसन पीसने की याद आ गई। कोई रोते हुए लड़के को मोटी रोटी का टुकड़ा देकर पत्र का उपसंहार सुनने लौट आई। कोई उपदेश वाक्य कहते कहते बुझी चिलम सुलगाने के लिए उठ गया।

इस तरह सबका आवागमन होता रहता है। केवल इस समारोह का सूत्रधार आदि से अन्त तक कभी हँसता, कभी रोता और कभी उदासीन बैठा रहकर कथा का आरोह अवरोह सँभालता है। पत्र लिख जाने पर उसे पूरा सुनाना पड़ता है। इतना ही नहीं, उसकी इच्छानुसार जहां तहां कुछ न कुछ जोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। तब वह पत्र को सब प्रकार से अपना प्रमाणित करने के लिए अँगूठे की छाप लगाने को आकुल हो उठता है।

ऐसे चिन्ह व्यवहार-जगत में प्रचलित असत्य से आत्मरक्षार्थ कवच हो सकते हैं, पर पत्र के स्वतः सिद्ध आत्मोद्गार में उनका विशेष महत्व नहीं, इसे सब मान नहीं सकते। इसी कारण कभी कभी नाम के नीचे अँगूठे के चित्रविचित्र और विविध आकृतियोंवाले चिन्ह भी सुशोभित हो जाते हैं।

पता लिखना इस पत्र-लेखन-गाथा का सबसे कठिन प्रसंग है। किसी के पुकारने का नाम नन्हकू और परिचय का महावीर है। किसी की घर की संज्ञा दुलरुआ और बाहर की भैंरोंदीन है। कोई अपने गांव में घसीटा और पर-गांव में राजाराम कहलाता है। कोई ननसार की सिरत-जिया और ददसार की दुखिया है। किसी को परिवार वाले रुपमतिया और बाहरवाले कलुइया कहते है।

नाम-उपनामों का यह विरोधाभासमूलक गठबन्धन हमारे कवि-समाज का स्मरण न दिलाये तो आश्चर्य की बात होगी। हमारे यहां भी एक व्यक्ति, जीवन में अकिंचन, रूप में कोयला, नाम से हीरालाल और उप-नाम से शरदेन्दु होकर भी उपहासास्पद नहीं माना जाता। अकिंचनता सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखती है, रूप प्रकृति का दान है और नाम माता पिता का उपहार कहा जायगा। शेष एक उपनाम ही रह जाता है जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं को सँभालना होगा। सम्भवतः इसी कारण वे अपने आप में किसी विशेषता के अभाव या भाव की चिन्ता न करके संसार की सुन्दरतम वस्तु को मिली हुई संज्ञा पर अधिकार जमाना चाहते हैं।

कविपरम्परा ने जिन शब्दों के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है उनके प्रति उपनाम-अन्वेषकों का आकर्षण स्वाभाविक ही कहा जायगा। पर जब उन शब्दों के अर्थ और उनके द्वारा संकेतित व्यक्तियों मे किसी प्रकार का भी सादृश्य नहीं मिलता तब उनकी स्थिति विचित्र हो जाती है। सुननेवाले

नाम और उपनाम का अन्तर न भूल सकें मानो इसीलिए वे दोनों को एक अविच्छिन्न सम्बन्ध में बांधकर उपस्थित रहते हैं।

पर ग्रामीण नाम और उपनामों की स्थिति इससे भिन्न है। नाम का सम्बन्ध तो पंडितजी के पोथी-पत्रे से है, किन्तु उपनाम व्यक्ति के रूप, स्वभाव, गुण या दूसरों की उसके प्रति धारणा का यथार्थ चित्र देता है।

जो लबार नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषता से शून्य नहीं हो सकता। जो गुजरिया कही जाती है वह वेश-भूषा की रंगीनी में गुड़िया से कम नहीं होती। जो कोयली की संज्ञा पाती है उसका श्यामांगिनी होने के साथ साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो नत्थू कहकर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहनना पड़ा होगा। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन में कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा। इन उपनामों में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं पर साधारणतः वे व्यक्ति के साथ सामञ्जस्यपूर्ण स्थिति ही रखते हैं, विरोध-मूलक नहीं।

पर पत्र लिखते समय यह जानना कठिन हो जाता है कि दूरदेश में एक व्यक्ति ने नाम और उपनाम में से किसे विशेष महत्व दिया होगा। जब तक वह परिचित वातावरण में है तब तक उसकी विशेषताओं के निरीक्षक ही उसका नाम निश्चित कर देते हैं। पर जब केवल उसको अपना परिचय देना है तब वह इनसे मिले सम्बोधनों में से किसे स्वीकार करेगा यह उसकी रुचि और दूसरों के प्रति उसके भाव पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में पत्र लिखनेवाला और लिखानेवाला दोनों ही अन्धकार में रहते हैं।

नाम की समस्या हल हो जाने पर स्थान की बाधा आ उपस्थित होती है। प्रायः वे नगर के नाम से अधिक पता नहीं जानते, यह चाहे विस्मय की बात न हो पर पत्र पानेवाले की ख्याति के सम्बन्ध में उनका अडिग विश्वास आश्चर्य में डाले बिना नहीं रहता। किसी को विश्वास है कि उसके

ऐसे चिन्ह व्यवहार-जगत में प्रचलित असत्य से आत्मरक्षार्थ कवच हो सकते हैं, पर पत्र के स्वतः सिद्ध आत्मोद्गार में उनका विशेष महत्व नहीं, इसे सब मान नहीं सकते। इसी कारण कभी कभी नाम के नीचे अँगूठे के चित्रविचित्र और विविध आकृतियोंवाले चिन्ह भी सुशोभित हो जाते हैं।

पता लिखना इस पत्र-लेखन-गाथा का सबसे कठिन प्रसंग है। किसी के पुकारने का नाम नन्हकू और परिचय का महावीर है। किसी की घर की संज्ञा दुलरुआ और बाहर की भँरोंदीन है। कोई अपने गांव में घसीटा और पर-गांव में राजाराम कहलाता है। कोई ननसार की सिरतजिया और ददसार की दुखिया है। किसी को परिवार वाले रुपमतिया और बाहरवाले कलुइया कहते हैं।

नाम-उपनामों का यह विरोधाभासमूलक गठबन्धन हमारे कवि-समाज का स्मरण न दिलाये तो आश्चर्य की बात होगी। हमारे यहां भी एक व्यक्ति, जीवन में अकिंचन, रूप में कोयला, नाम से हीरालाल और उपनाम से शरदेन्दु होकर भी उपहासास्पद नहीं माना जाता। अकिंचनता सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखती है, रूप प्रकृति का दान है और नाम माता पिता का उपहार कहा जायगा। शेष एक उपनाम ही रह जाता है जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं को सँभालना होगा। सम्भवतः इसी कारण वे अपने आप में किसी विशेषता के अभाव या भाव की चिन्ता न करके संसार की सुन्दरतम वस्तु को मिली हुई संज्ञा पर अधिकार जमाना चाहते हैं।

कविपरम्परा ने जिन शब्दों के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है उनके प्रति उपनाम-अन्वेषकों का आकर्षण स्वाभाविक ही कहा जायगा। पर जब उन शब्दों के अर्थ और उनके द्वारा संकेतित व्यक्तियों में किसी प्रकार का भी सादृश्य नहीं मिलता तब उनकी स्थिति विचित्र हो जाती है। सुननेवाले

नाम और उपनाम का अन्तर न भूल सकें मानो इसीलिए वे दोनों को एक अविच्छिन्न सम्बन्ध में बांधकर उपस्थित रहते हैं।

पर ग्रामीण नाम और उपनामों की स्थिति इससे भिन्न है। नाम का सम्बन्ध तो पंडितजी के पोथी-पत्रे से है, किन्तु उपनाम व्यक्ति के रूप, स्वभाव, गुण या दूसरों की उसके प्रति धारणा का यथार्थ चित्र देता है।

जो लवार नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषता से शून्य नहीं हो सकता। जो गुजरिया कही जाती है वह वेश-भूषा की रंगीनी में गुड़िया से कम नहीं होती। जो कोयली की संज्ञा पाती है उसका श्यामांगिनी होने के साथ साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो नत्थू कहकर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहनना पड़ा होगा। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन में कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा। इन उपनामों में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं पर साधारणतः वे व्यक्ति के साथ सामञ्जस्यपूर्ण स्थिति ही रखते हैं, विरोध-मूलक नहीं।

पर पत्र लिखते समय यह जानना कठिन हो जाता है कि दूरदेश में एक व्यक्ति ने नाम और उपनाम में से किसे विशेष महत्व दिया होगा। जब तक वह परिचित वातावरण में है तब तक उसकी विशेषताओं के निरीक्षक ही उसका नाम निश्चित कर देते हैं। पर जब केवल उसको अपना परिचय देना है तब वह इनसे मिले सम्बोधनों में से किसे स्वीकार करेगा यह उसकी रुचि और दूसरों के प्रति उसके भाव पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में पत्र लिखनेवाला और लिखानेवाला दोनों ही अन्धकार में रहते हैं।

नाम की समस्या हल हो जाने पर स्थान की बाधा आ उपस्थित होती है। प्रायः वे नगर के नाम से अधिक पता नहीं जानते, यह चाहे विस्मय की बात न हो पर पत्र पानेवाले की ख्याति के सम्बन्ध में उनका अडिग विश्वास आश्चर्य में डाले बिना नहीं रहता। किसी को विश्वास है कि उसके

ऐसे चिन्ह व्यवहार-जगत में प्रचलित असत्य से आत्मरक्षार्थ कवच हो सकते हैं, पर पत्र के स्वतः सिद्ध आत्मोद्‌गार में उनका विशेष महत्व नहीं, इसे सब मान नहीं सकते। इसी कारण कभी कभी नाम के नीचे अँगूठे के चित्रविचित्र और विविध आकृतियोंवाले चिन्ह भी सुशोभित हो जाते हैं।

पता लिखना इस पत्र-लेखन-गाथा का सबसे कठिन प्रसंग है। किसी के पुकारने का नाम नन्हकू और परिचय का महावीर है। किसी की घर की संज्ञा दुलरुआ और बाहर की भँरोंदीन है। कोई अपने गांव में घसीटा और पर-गांव में राजाराम कहलाता है। कोई ननसार की सिरत-जिया और ददसार की दुखिया है। किसी को परिवार वाले रुपमतिया और बाहर वाले कलुइया कहते हैं।

नाम-उपनामों का यह विरोधाभासमूलक गठबन्धन हमारे कवि-समाज का स्मरण न दिलाये तो आश्चर्य की बात होगी। हमारे यहां भी एक व्यक्ति, जीवन में अकिंचन, रूप में कोयला, नाम से हीरालाल और उप-नाम से शरदेन्दु होकर भी उपहासास्पद नहीं माना जाता। अकिंचनता सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखती है, रूप प्रकृति का दान है और नाम माता पिता का उपहार कहा जायगा। शेष एक उपनाम ही रह जाता है जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं को सँभालना होगा। सम्भवतः इसी कारण वे अपने आप में किसी विशेषता के अभाव या भाव की चिन्ता न करके संसार की सुन्दरतम वस्तु को मिली हुई संज्ञा पर अधिकार जमाना चाहते हैं।

कविपरम्परा ने जिन शब्दों के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है उनके प्रति उपनाम-अन्वेषकों का आकर्षण स्वाभाविक ही कहा जायगा। पर जब उन शब्दों के अर्थ और उनके द्वारा संकेतित व्यक्तियों में किसी प्रकार का भी सादृश्य नहीं मिलता तब उनकी स्थिति विचित्र हो जाती है। सुननेवाले

नाम और उपनाम का अन्तर न भूल सकें मानो इसीलिए वे दोनों को एक अविच्छिन्न सम्बन्ध में बांधकर उपस्थित रहते हैं।

पर ग्रामीण नाम और उपनामों की स्थिति इससे भिन्न है। नाम का सम्बन्ध तो पंडितजी के पोथी-पत्रे से है, किन्तु उपनाम व्यक्ति के रूप, स्वभाव, गुण या दूसरों की उसके प्रति धारणा का यथार्थ चित्र देता है।

जो लबार नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषता से शून्य नहीं हो सकता। जो गुजरिया कही जाती है वह वेश-भूषा की रंगीनी में गुड़िया से कम नहीं होती। जो कोयली की संज्ञा पाती है उसका श्यामांगिनी होने के साथ साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो नत्थू कहकर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहनना पड़ा होगा। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन में कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा। इन उपनामों में कुछ अपवाद भी हो सकते है पर साधारणतः वे व्यक्ति के साथ सामञ्जस्यपूर्ण स्थिति ही रखते हैं, विरोध-मूलक नहीं।

पर पत्र लिखते समय यह जानना कठिन हो जाता है कि दूरदेश में एक व्यक्ति ने नाम और उपनाम में से किसे विशेष महत्व दिया होगा। जब तक वह परिचित वातावरण में है तब तक उसकी विशेषताओं के निरीक्षक ही उसका नाम निश्चित कर देते हैं। पर जब केवल उसको अपना परिचय देना है तब वह इनसे मिले सम्बोधनों में से किसे स्वीकार करेगा यह उसकी रुचि और दूसरों के प्रति उसके भाव पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में पत्र लिखनेवाला और लिखानेवाला दोनों ही अन्धकार में रहते हैं।

नाम की समस्या हल हो जाने पर स्थान की बाधा आ उपस्थित होती है। प्रायः वे नगर के नाम से अधिक पता नहीं जानते, यह चाहे विस्मय की बात न हो पर पत्र पानेवाले की ख्याति के सम्बन्ध में उनका अडिग विश्वास आश्चर्य में डाले बिना नहीं रहता। किसी को विश्वास है कि उसके

ऐसे चिन्ह व्यवहार-जगत में प्रचलित असत्य से आत्मरक्षार्थ कवच हो सकते हैं, पर पत्र के स्वतः सिद्ध आत्मोद्गार में उनका विशेष महत्व नहीं, इसे सब मान नहीं सकते। इसी कारण कभी कभी नाम के नीचे अँगूठे के चित्रविचित्र और विविध आकृतियोंवाले चिन्ह भी सुशोभित हो जाते हैं।

पता लिखना इस पत्र-लेखन-गाथा का सबसे कठिन प्रसंग है। किसी के पुकारने का नाम नन्हकू और परिचय का महावीर है। किसी की घर की संज्ञा दुलरुआ और बाहर की भैंरोंदीन है। कोई अपने गांव में घसीटा और पर-गांव में राजाराम कहलाता है। कोई ननसार की सिरत-जिया और ददसार की दुखिया है। किसी को परिवार वाले रुपमतिया और बाहरवाले कलुइया कहते हैं।

नाम-उपनामों का यह विरोधाभासमूलक गठबन्धन हमारे कवि-समाज का स्मरण न दिलाये तो आश्चर्य की बात होगी। हमारे यहां भी एक व्यक्ति, जीवन में अकिंचन, रूप में कोयला, नाम से हीरालाल और उप-नाम से शरदेन्दु होकर भी उपहासास्पद नहीं माना जाता। अकिंचनता सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखती है, रूप प्रकृति का दान है और नाम माता पिता का उपहार कहा जायगा। शेष एक उपनाम ही रह जाता है जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं को सँभालना होगा। सम्भवतः इसी कारण वे अपने आप में किसी विशेषता के अभाव या भाव की चिन्ता न करके संसार की सुन्दरतम वस्तु को मिली हुई संज्ञा पर अधिकार जमाना चाहते हैं।

कविपरम्परा ने जिन शब्दों के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है उनके प्रति उपनाम-अन्वेषकों का आकर्षण स्वाभाविक ही कहा जायगा। पर जब उन शब्दों के अर्थ और उनके द्वारा संकेतित व्यक्तियों में किसी प्रकार का भी सादृश्य नहीं मिलता तब उनकी स्थिति विचित्र हो जाती है। सुननेवाले

नाम और उपनाम का अन्तर न भूल सकें मानो इसीलिए वे दोनों को एक अविच्छिन्न सम्बन्ध में बांधकर उपस्थित रहते हैं।

पर ग्रामीण नाम और उपनामों की स्थिति इससे भिन्न है। नाम का सम्बन्ध तो पंडितजी के पोथी-पत्रे से है, किन्तु उपनाम व्यक्ति के रूप, स्वभाव, गुण या दूसरों की उसके प्रति धारणा का यथार्थ चित्र देता है।

जो लबार नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषता से शून्य नहीं हो सकता। जो गुजरिया कही जाती है वह वेश-भूषा की रंगीनी में गुड़िया से कम नहीं होती। जो कोयली की संज्ञा पाती है उसका श्यामांगिनी होने के साथ साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो नत्थू कहकर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहनना पड़ा होगा। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन में कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा। इन उपनामों में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं पर साधारणतः वे व्यक्ति के साथ सामञ्जस्यपूर्ण स्थिति ही रखते हैं, विरोध-मूलक नहीं।

पर पत्र लिखते समय यह जानना कठिन हो जाता है कि दूरदेश में एक व्यक्ति ने नाम और उपनाम में से किसे विशेष महत्व दिया होगा। जब तक वह परिचित वातावरण में है तब तक उसकी विशेषताओं के निरीक्षक ही उसका नाम निश्चित कर देते हैं। पर जब केवल उसको अपना परिचय देना है तब वह इनसे मिले सम्बोधनों में से किसे स्वीकार करेगा यह उसकी रुचि और दूसरों के प्रति उसके भाव पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में पत्र लिखनेवाला और लिखानेवाला दोनों ही अन्धकार में रहते हैं।

नाम की समस्या हल हो जाने पर स्थान की बाधा आ उपस्थित होती है। प्रायः वे नगर के नाम से अधिक पता नहीं जानते, यह चाहे विस्मय की बात न हो पर पत्र पानेवाले की ख्याति के सम्बन्ध में उनका अडिग विश्वास आश्चर्य में डाले बिना नहीं रहता। किसी को विश्वास है कि उसके

लाड़ले बेटे के रूप से सब परिचित होंगे। किसी की दृढ़ धारणा है कि उसके कुश्ती लड़नेवाले भतीजे का नाम नगर भर जानता होगा। कोई समझता है कि उसके भाई जैसे गवैये की ख्याति डाकघर तक पहुँच गई होगी। कोई मानता है कि उसके सांप बिच्छू का विष झाड़नेवाले चाचा से डाकिया अनजान नहीं हो सकता। कोई समझती है कि उसके पति का पशु-चिकित्सा-विशारद होना ही उसका पर्याप्त पता है। कोई कहता है कि उसके, हनुमान-चालीसा कंठस्थ कर लेनेवाले मामा की विद्वत्ता छिपी नहीं रह सकती।

इनके प्रिय सम्बन्धियों की दूरदेश के जनसमूह में वही स्थिति है जो समुद्र में बूंद की होती है, इसे न वे जानते हैं और न मानना चाहते हैं।

अनेक प्रयत्नों के उपरान्त खोज निकाले हुए पते ठिकाने के अनुसार पत्र लिख जाने पर उसे शीघ्र से शीघ्र डाकखाने पहुँचाना आवश्यक हो उठता है। कोई तुरन्त पत्र को मिर्जई या साफे में खोंसकर और हाथ में लोटा डोर थामकर तीन मील दूर पोस्ट आफिस की ओर चल देता है। कोई सवेरे जाने के लिए अभी से गठरी वांध लेता है। कोई पत्र को वकुचे में सुरक्षित रख कर अन्य आवश्यक कार्य निपटाने में लग जाता है। और कोई स्नेह से उँगलियां फेर फेर कर अक्षरों की स्याही फैलाने लगता है।

अनेक वार तो पत्रों को डाकखाने तक पहुँचा देने का कर्तव्य भी मुझे सँभालना पड़ जाता है, पर प्रेपक इस सम्वन्ध में जितना अपना विश्वास करते हैं उतना मेरा नहीं।

चिट्ठी डालने के लाल वम्वे को पहचानने में उनसे भूल न होगी इस सम्वन्ध में वे आश्वस्त हैं। पर मैं जिसे यह काम सौंपूंगी वह भूल से पत्र को किसी दूसरे वम्वे में नहीं डाल सकता, इस विपय में उनका सन्देह वना ही रहता है। विशेपतः शहर में जहां तहां पत्र डालने के और पानी के वम्वों का वाहुल्य उन्हें निश्चिन्त होने नहीं देता।

उत्तर की प्रतीक्षा के दिन तो उन्हें और भी व्यस्त कर देते हैं। जहां सप्ताह में एक बार डाकिया आता है वहां के पत्र-प्रेषक प्रायः नित्य ही डाकखाने तक दौड़ लगाते रहते हैं। उनके नाम कोई चिट्ठी नहीं आई, इतना सुनकर सन्तुष्ट हो जाना भी उनके लिए सम्भव नहीं। कोई अपना नाम उपनाम बताने और फिर से सब पते जांच लेने का हठ करने के कारण डाकबाबू से झिड़की खाता है। कोई पत्र पाने की दुराशा में गोत्र से लेकर गांव तक के परिचय की अनेक आवृत्तियां करके डाकिये का कोपभाजन बनता है।

जो पत्र मेरे पते से आते हैं उनके सम्बन्ध में उत्तर देते देते मेरा धैर्य भी सीमा तक पहुँचे बिना नहीं रहता।

कोई पूछता है उत्तर आने में कै दिन बाकी हैं। कोई जानना चाहता है कि पता लिखने में भूल तो नहीं हुई। किसी का अनुमान है कि पत्र पाने वाले के नाम के साथ उसकी सब विशेषतायें न जोड़ देने के कारण ही पत्र नहीं पहुँच पाया। किसी को सन्देह है कि टिकट पुराना होने के कारण, डाकबाबू ने पत्र को रद्दी में न फेंक दिया हो। किसी को शंका है कि बरसात के कारण पते के अक्षर न धुल गए हों। किसी का विश्वास है कि चिट्ठी भारी हो जाने के कारण बैरंग होकर निरुद्देश घूम रही होगी।

उनकी नासमझी पर कभी हँसी आती है कभी क्रोध। उनकी विवशता पर कभी झुंझलाहट होती है कभी ग्लानि। अपने भावों और विचारों के विनिमय के लिए इतने आकुल व्यक्तियों को किसने इतना असमर्थ बना डाला? इतने विशाल जन-समूह को वाणी-हीन बना कर जिन्हें अपनी वाग्विदग्धता का अभिमान है वे कितने निर्लज्ज हैं? इस प्रकार के प्रश्न स्वाभाविक ही कहे जायंगे।

यह सब तो जैसे तैसे चल ही रहा था पर एक दिन जब गुंगिया मेरे आंचल का छोर थाम कर विविध हावभाव द्वारा पत्र लिख देने का

लाड़ले बेटे के रूप से सब परिचित होंगे। किसी की दृढ़ धारणा है कि उसके कुश्ती लड़नेवाले भतीजे का नाम नगर भर जानता होगा। कोई समझता है कि उसके भाई जैसे गवैये की ख्याति डाकघर तक पहुँच गई होगी। कोई मानता है कि उसके सांप बिच्छू का विष झाड़नेवाले चाचा से डाकिया अनजान नहीं हो सकता। कोई समझती है कि उसके पति का पशु-चिकित्सा-विशारद होना ही उसका पर्याप्त पता है। कोई कहता है कि उसके, हनुमान-चालीसा कंठस्थ कर लेनेवाले मामा की विद्वत्ता छिपी नहीं रह सकती।

इनके प्रिय सम्बन्धियों की दूरदेश के जनसमूह में वही स्थिति है जो समुद्र में बूंद की होती है, इसे न वे जानते हैं और न मानना चाहते हैं।

अनेक प्रयत्नों के उपरान्त खोज निकाले हुए पते ठिकाने के अनुसार पत्र लिख जाने पर उसे शीघ्र से शीघ्र डाकखाने पहुँचाना आवश्यक हो उठता है। कोई तुरन्त पत्र को मिर्जई या साफे में खोंसकर और हाथ में लोटा डोर थामकर तीन मील दूर पोस्ट आफिस की ओर चल देता है। कोई सवेरे जाने के लिए अभी से गठरी वांध लेता है। कोई पत्र को वकुचे में सुरक्षित रख कर अन्य आवश्यक कार्य निपटाने में लग जाता है। और कोई स्नेह से उँगलियां फेर फेर कर अक्षरों की स्याही फैलाने लगता है।

अनेक वार तो पत्रों को डाकखाने तक पहुँचा देने का कर्तव्य भी मुझे सँभालना पड़ जाता है, पर प्रेषक इस सम्बन्ध में जितना अपना विश्वास करते हैं उतना मेरा नहीं।

चिट्ठी डालने के लाल वम्वे को पहचानने में उनसे भूल न होगी इस सम्बन्ध में वे आश्वस्त हैं। पर मैं जिसे यह काम सौंपूंगी वह भूल से पत्र को किसी दूसरे वम्वे में नहीं डाल सकता, इस विषय में उनका सन्देह वना ही रहता है। विशेषतः शहर में जहां तहां पत्र डालने के और पानी के वम्वों का वाहुल्य उन्हें निश्चिन्त होने नहीं देता।

जच्चा को चिरौंजी डालकर हरीरा दिया गया, बबूल का गोंद पाग कर पँजीरी दी गई। जब सवा महीने में मां बेटी को गोद में लेकर सौरी से निकली तो परिवार वालों ने जच्चा बच्चा के स्वास्थ्य को नजर से बचाने के लिए न जाने कितने टोने-टोटके किये। बालिका की इतनी लोई की गई कि उसकी रोमहीन देह मदा की पिण्डी जैसी दिखाई देने लगी। उसके इतना तेल मला गया कि उसके अंगों पर देखनेवालों की दृष्टि फिसलने लगी।

गदबदे शरीर वाली धनपतिया ने दस महीने की अवस्था तक पहुंचते न पहुंचते चलना भी आरम्भ कर दिया पर उसका कण्ठ पांच वर्ष की अवस्था पार करने पर भी नहीं फूटा। न वह मां कह सकी न दादा, न उसके मुख से दूधू निकला न हप्पा। केवल ऐं ऐं को विशेष ध्वनियों में उच्चारण करके ही वह मन के भाव व्यक्त करना जानती थी।

बोलना आरम्भ करने की अवस्था निकल जाने पर मां बाप के मुख पर चिन्ता की छाया पड़ने लगी। गंडे तावीज बांधे गए, जन्तर मन्तर का सहारा लिया गया, झाड़-फूंक का उपचार हुआ। मानता, पूजा, अनुष्ठान आदि की शक्ति-परीक्षा हुई पर धनपतिया पर वाणी कृपालु न हो सकी। अन्त में रग्घू ने शहर ले जाकर डाक्टर को भी दिखाया। गुंगिया के तालू और कौव्वे की बनावट में जो त्रुटि रह गई थी उसका सुधार विशेष प्रकार के आपरेशन द्वारा ही हो सकता था जिसके लिए न रग्घू के पास धन था न साहस। परिणामतः धनपतिया गुंगिया बनकर ही बढ़ने लगी। प्रायः गुंगेपन के साथ मिलनेवाली बधिरता उसे न देकर विधाता ने उसके अभिशाप को दूना कर दिया, क्योंकि श्रवणशक्ति के अभाव में मूकता उतनी असह्य नहीं लगती जितनी उसके साथ। उसकी पीठ पर केवल एक बहिन और हुई जो बोलने का वरदान लेकर आई थी।

गुंगिया ने वाणी के अभाव को मानो समझदारी से भर लिया था ! वह

संकेत करने लगी तब तो मैं स्वयं अवाक रह गई। क्या कहीं मेरी दुर्दशा की सीमा नहीं है ? क्या अब गुंगों के लिए भी पत्र लिखना होगा ? गुंगिया किसे क्या लिखवाना चाहती है यह मैं किस प्रकार समझ सकूंगी !

पर जिसे लेकर ये समस्यायें उठ रही थीं उसे इन सब के समाधान से कोई सरोकार नहीं था। मुझे इतने पत्र लिखते देखकर ही सम्भवतः उसका हृदय अपनी करुण विवशता भूल गया था।

इतनी सुख-दुख-कथायें लिख चुकने पर भी एक व्यक्ति, उसके ऐसे प्रत्यक्ष सुखदुःखों की भाषा नहीं जानता है, ऐसा विश्वास गुंगिया के लिए सहज नहीं था।

मैं उसे अनेक बार देखते देखते अब उसकी उपस्थिति की अभ्यस्त हो चुकी थी। आते समय वह मेरी प्रतीक्षा में बैठी हुई मिलती थी। जाते समय वह पीछे पीछे चलकर दूर तक पहुँचाने आती थी। कुछ लिखते समय वह कहीं आसपास बैठकर बड़े कुतूहल के साथ मेरा क्रिया-कलाप देखती थी। पर मैं अब तक उसे कौतुकी दर्शकमात्र समझे बैठी थी, इसी से जब उसने स्वयं पत्र-प्रेपक की भूमिका ग्रहण कर ली तब मैं बड़े असमञ्जस में पड़ गई।

गुंगिया को यह उपनाम गुंगेपन के कारण मिला है। उसका नाम तो है धनपतिया। उसका पिता रग्घू तेली सम्पन्न भी था, और ईमानदार भी। घर में पुष्ट बैलों की जोड़ी थी, कोल्हू चलता था और सरसों से लेकर रेंडी तक सब कुछ पेरा जाता था। रग्घू के तेल की शुद्धता और उसकी खली की उपयोगिता की ख्याति गांव की सीमा लांघ चुकी थी।

पहलौठी सन्तान होने के कारण गुंगिया के जन्म के उपलक्ष्य में बड़ी धूम-धाम रही। नगाड़ेवाले नेग लेने आये, डोमनी नाचकर चुनरी ले गई और तेली पंचों की ज्योनार में कई पीपे घी खर्च हो गया।

जच्चा को चिरौंजी डालकर हरीरा दिया गया, ववूल का गोंद पाग कर पंजीरी दी गई। जव सवा महीने में मां वेटी को गोद में लेकर सौरी से निकली तो परिवार वालों ने जच्चा वच्चा के स्वास्थ्य को नजर से बचाने के लिए न जाने कितने टोने-टोटके किये। वालिका की इतनी लोई की गई कि उसकी रोमहीन देह मदा की पिण्डी जैसी दिखाई देने लगी। उसके इतना तेल मला गया कि उसके अंगों पर देखनेवालों की दृष्टि फिसलने लगी।

गदवदे शरीर वाली धनपतिया ने दस महीने की अवस्था तक पहुंचते न पहुंचते चलना भी आरम्भ कर दिया पर उसका कण्ठ पांच वर्ष की अवस्था पार करने पर भी नहीं फूटा। न वह मां कह सकी न दादा, न उसके मुख से दूधू निकला न हप्पा। केवल एं एं को विशेष ध्वनियों में उच्चारण करके ही वह मन के भाव व्यक्त करना जानती थी।

वोलना आरम्भ करन की अवस्था निकल जान पर मां वाप के मुख पर चिन्ता की छाया पड़ने लगी। गंडे तावीज वांधे गए, जन्तर मन्तर का सहारा लिया गया, झाड़-फूंक का उपचार हुआ। मानता, पूजा, अनुष्ठान आदि की शक्ति-परीक्षा हुई पर धनपतिया पर वाणी कृपालु न हो सकी। अन्त में रग्घू ने शहर ले जाकर डाक्टर को भी दिखाया। गुंगिया के तालू और कौव्वे की बनावट में जो त्रुटि रह गई थी उसका सुधार विशेष प्रकार के आपरेशन द्वारा ही हो सकता था जिसके लिए न रग्घू के पास धन था न साहस। परिणामतः धनपतिया गुंगिया वनकर ही बढ़ने लगी। प्रायःगुंगेपन के साथ मिलनेवाली वधिरता उसे न देकर विधाता ने उसके अभिशाप को दूना कर दिया, क्योंकि श्रवणशक्ति के अभाव में मूकता उतनी असह्य नहीं लगती जितनी उसके साथ। उसकी पीठ पर केवल एक वहिन और हुई जो वोलने का वरदान लेकर आई थी।

गुंगिया ने वाणी के अभाव को मानो समझदारी से भर लिया था ! वह

इतनी कुशाग्रबुद्धि थी कि जो एक बार देखती उसे कभी न भूलती, जो एक बार सीखती उसमें कभी त्रुटि न होने देती। आठ-नौ वर्ष की अवस्था तक पहुंचते पहुँचते वह घर के कामों में मा की सहकारी बन बैठी।

अब विवाह की समस्या का समाधान आवश्यक हो गया। कन्या के जीवन से चिर-कौमार्य का कलंक दूर करने के लिए रग्घू ने उसी धोखाधड़ी का आश्रय लिया जो विवाह की हाट के अनुपयुक्त कन्याओं के माता पिता का ब्रह्मास्त्र है। उसने किसी दूरस्थ गांव में छोटी कन्या की सगाई करने के उपरान्त विवाह के अवसर पर मण्डप तले गुंगिया को बैठा कर शेष विधि सम्पन्न करा दी।

तीन-चार वर्ष बाद गौने में ससुराल पहुंचकर गुंगिया ने अपनी दयनीय स्थिति का नवीन परिचय पाया। वह जब कुछ न बोल सकी और विवश किये जाने पर ऐं ऐं करने लगी तब ससुराल वाले धोखा खाने के क्षोभ में आपे से बाहर हो गए।

बहू गुंगी है, उसके बाप ने सबको ठग लिया, इसे गहने छीनकर निकाल दो, आदि उद्‌गारों में गुंगिया ने अपने जीवन के निठुर अभिशाप की वह छाया देखी जो नैहर में मां-बाप की ममता से ढकी हुई थी।

उसने बड़ी दीनता से सास के पैर पकड़ लिए और लात खाने पर भी उन्हीं में मुख छिपाये हुए रोती रही, पर किसी का हृदय न पसीजा। धोखा तो धोखा ही है। जिसने उनके साथ छल-कपट का व्यवहार किया वह यदि स्वयं दण्ड न भोगे तो उसकी सन्तान को तो भोगना ही पड़ेगा। अन्यथा न्याय की महिमा कहां रहेगी! अन्त में सब गहने कपड़े रखकर ससुराल वालों ने गुंगिया को उसके पिता के घर भेजकर ही सन्तोष की सांस ली।

रग्घू अपने कार्य से पहले ही अनुतप्त था। अन्याय-प्रतिकार के रूप में उसने अपनी दूसरी लड़की का विवाह वहीं कर देने का प्रस्ताव भेजकर संधि

कर ली। इस बार कन्या को भली भांति देख सुनकर शुभ मुहूर्त्त में यह विवाह भी हो गया। बूढ़ियां कहती हैं कि जब गुंगिया ने अपने चढ़ावे में आये हुए गहने कपड़ों में सजी हुई बहिन का अपने पति से गठबन्धन होते देखा तब वह मुंह में आंचल ठूंसकर ही रुलाई रोक सकी।

बहिन के चले जाने पर वह अपनी मूक सेवा से माता पिता का सन्ताप दूर करने का प्रयत्न करने लगी।

तब से बहुत समय बीत गया। गुंगिया के मां-बाप भी परलोक सिधार गए और उसके सास-ससुर भी। उसकी बहिन रुकिया ने दो बच्चों को जन्म दिया पर उनमें एक भी तीन वर्ष से अधिक आयु लेकर नहीं आया। तीसरे का शोक न सहन के विचार से ही सम्भवतः वह उसे होते ही मातृ-हीन बना गई। घर में उसके पालने का कोई प्रबन्ध न कर सकने के कारण पिता नवजात शिशु को ससुराल ले गया और उसे गुंगिया की गोद में रखकर रोने लगा।

अपने ही समान वाणीहीन शिशु की टिमटिमाती हुई आंखों में गुंगिया ने कौन सा सन्देश पढ़ लिया, यह तो वही जाने, पर वह उसे लौटा देने का साहस न कर सकी। बहनोई ने दबी जबान से उसे घर ले चलने का प्रस्ताव किया, पर उसके मुख पर अस्वीकृति की कठोर मुद्रा देखकर बीच ही में रुक गया।

गांववालों ने इस गुंगी मा का सन्तान-पालन देखकर दांतों तले उँगलीं दबाई। उसने एक बैल बेचकर बच्चे के दूध के लिए दो बकरियां खरीदीं, अपने धराऊ कपड़े काट कर उसके लिए झँगूला, टोपी सिलवाये, अपनी हमेल, पहुंची तुड़वा कर उसके लिए पैंजनी, कर्धनी, कठुला और कड़े गढ़वाये तथा नामकरण के दिन, अपने जोड़े हुए रुपये खर्च करके सबकी दावत कर डाली।

मां बाप के न रहने से गुंगिया का कार-बार वैसे ही धीमा हो गया था, उसपर अब वह शिशु की देख-रेख में व्यस्त हो गई। इस प्रकार सम्पत्ति घटने के साथ साथ हुलासी बढ़ने लगा। उसके बाप ने पहले कुछ दिनों तक खोज खबर ली फिर वह नई पत्नी और नई सन्तान के स्नेह में उसे भूल ही गया। गुंगिया ने न उससे कभी कुछ मांगा और न हुलासी के राजसी खर्च में कमी की।

एक अवस्था तक गुंगिया और उसका बेटा दोनों गुंगे थे, अतः एक दूसरे की बात संकेतों से ही समझते रहे। बोलना सीख जाने पर अबोध बालक मा के मौन पर विस्मित हुआ फिर कुछ समझदार होने पर वह लज्जा का अनुभव करने लगा। गांव के लड़के जब उसे 'गुंगी का बेटा गुंगा' कहकर चिढ़ाते तब वह मर्माहत हो जाता। कभी उन्हें मारने दौड़ता, कभी रोने लगता। जब गुंगिया शोर गुल सुनकर दौड़ आती और विविध चेष्टाओं के साथ 'एं एं' कहकर उन्हें डांटना आरम्भ करती तब वे नटखट बालक 'गुंगा मौसी गुंगा मौसी' की रट लगाते हुए भाग खड़े होते।

हुलासी को घर लाकर वह बेचारी गोद में बैठाती, मटकी से निकाल कर बतासे देती, उँगलियों से बालों की धूल झाड़ती, आंचल से मुख पोंछती और अनेक प्रकार के संकेतों द्वारा उसे समझाने का प्रयत्न करती। पर इस उपचार से बालक का क्षोभ और अधिक बढ़ गया। कभी वह दोनों हाथों से उसे ढकेलने के उपरान्त आंगन में औंधे मुंह पड़कर और अधिक रोने लगता और कभी उसका अंचल खींचकर मचलता हुआ पूछता कि सबकी अम्मा तो बोलती हैं वही अकेली क्यों गुंगी है। गुंगिया इस प्रश्न का क्या उत्तर दे! गांव की किसी भी मा से वह स्नेह में, यत्न में कम नहीं, पर अपने गुंगेपन के लिए वह क्या सफाई दे!

ज्यों ज्यों हुलासी बड़ा होता गया त्यों त्यों दूसरों के द्वारा अपने जीवन

वृत्त के सम्बन्ध में कुछ झूठ कुछ सच जानता गया। गुंगिया तो कुछ कह नहीं सकती थी, इसी कारण अनेक निर्मूल दन्तकथायें भी प्रतिवादहीन रह गईं। गुंगिया, अपने पति और घर को छीन लेनेवाली वहिन से वहुत रुष्ट थी। प्रतिशोध लेने की इच्छा से ही वह उसके बेटे को वाप से छीन लाई है। हुलासी के प्रति वह जो प्रेम दिखाती है उसके मूल में भी कुछ दुरभि-सन्धि अवश्य है। इस प्रकार के संकेतों को पूर्णतः न समझ सकने पर भी वालक का मन गुंगिया अम्मा से विरक्त होने लगा।

'पर हित घृत जिनके मनमाखी' कह कर गोस्वामी जी ने जिनका परिचय दिया है उन्हीं का वहुमत होने के कारण गुंगिया का यह थोड़ा सा सुख भी एक अव्यक्त व्यथा में परिवर्तित हो गया। हुलासी का पिता किस अरक्षित अवस्था में अपने पुत्र को छोड़ गया था, उसने उसके पालन के सम्बन्ध में कितनी उपेक्षा दिखाई थी, विमाता ने अपनी सन्तान का अधिकार सुरक्षित रखने के लिए उसे दूर रखने का कितना प्रयत्न किया था, यह सब उसे वताता ही कौन!

गुंगिया के नीरव स्नेह की गहराई उसकी पहुंच से वाहर थी। इसके अतिरिक्त विशेष दुलार पाने के कारण वह उसके स्नेह को अपना प्राप्य समझने लगा था उसका दान नहीं।

एक दिन जव उसने गुंगिया से पूछ ही लिया कि वह उसे उसके वाप से क्यों छीन लाई है तव गुंगिया के हृदय में विष-वुझा वाण सा छिद गया, पर वह अपनी व्यथा भी कैसे प्रकट करती! वोलने के प्रयास में खुला मुंह, विस्मय से भरी आंखें निराशा से विजड़ित-भंगिमा आदि वालक के लिए एक अवूझ पहेली वन कर रह गए।

वालक के पिता की खोज करने पर पता चला कि वह किसी कारखाने में काम मिल जाने के कारण वाल वच्चों के साथ कानपुर चला गया है। इसके

उपरान्त गुंगिया ने अपने ककने गिरवी रखकर उसे पिता के पास भजने का प्रवन्ध किया।

हुलासी के लिए नये कपड़े बने। काठ और मिट्टी के रंगविरंगे खिलौने एक पिटारे में यत्नपूर्वक सजाये गए। भुने महुये, गुड़धानी, लड्डू आदि मिष्टान्नों की गठरी बांधी गई। चिकनी काली दोहनी में घी भरा गया। गांव के रिश्ते से काका लगने वाले एक विज्ञ को बड़ी मनुहार के उपरान्त साथ जाने के लिए राजी किया गया। फिर एक दिन पंडितजी के बताये मुहूर्त्त में असगुन के डर से आंसू रोकती हुई गुंगिया तीन मील चलकर हुलासी और काका को रेल में बैठा आई। उन्हें पहुंचा कर लौटते समय उसके लिए गांव तक पहुंचना भी कठिन हो गया।

कभी खेत की मेड़ों पर खड़ी होती, कभी पेड़ों की छाया में बैठती, कभी रोती, कभी हँसती, गुंगिया घर पहुंची और आंगन के तुलसीचौरे पर ही सवेरे तक औंधे मुंह पड़ी रही।

कई दिन उसका मन उड़ा उड़ा सा रहा। जिस दिन उसने काम करने का निश्चय करके द्वार खोला उसी दिन धूलधूसरित काका के पीछे आते हुए हुलासी पर उसकी दृष्टि पड़ी। बालक के नये कपड़े मैले हो गए थे, मुख कुम्हला गया था। वह दौड़ कर बेटे को कण्ठ से लगा कर शब्दहीन अस्फुट क्रन्दन में अपनी अतीत व्यथा प्रकट करने लगी।

अन्त में यात्रा का परिणाम ज्ञात हुआ। दो दिन इधर उधर भटकने के उपरान्त हुलासी के पिता से भेंट हुई। वह एक मैली संकीर्ण गली में दो अँधेरी कोठरिया लेकर अपने चार बच्चों और घरवाली के साथ रहता है। इस भूले हुए पुत्र को देख कर उसकी आंखों में जो ममता चमक उठी थी वह पत्नी की कठोर दृष्टि की छाया में खो गई। रात भर पति पत्नी में विवाद होता रहा।

सवेरे विविध तर्कों के द्वारा उसने काका महोदय से पुत्र को लौटा ले जाने का अनुरोध किया। हुलासी की ननसार में जो कुछ है वह उसी को मिलेगा, पर उन बच्चों का तो वही एक आधार है। हुलासी पिता के घर में भी विमाता के पास रहेगा और ननसार में भी, ऐसी दशा में उसे गुंगिया के साथ रह कर कार-बार, घर-जमीन, रुपया पैसा आदि संभालना चाहिए। उसका सौतेला भाई जब कुछ बड़ा हो जायगा तो वह भी हुलासी के पास भेज दिया जायगा। हुलासी की विमाता स्वयं गांव जाकर रहने के पक्ष में है, पर गुंगिया को यह पसन्द न होगा। पर वह अमर होकर तो आई नहीं है! उसके बाद वे सब एकत्र होकर उसका कार-बार सँभालेंगे।

इस कठोर व्यवहारिकता के सामने न हुलासी के क्रन्दन की चली, न काका के अनुनय की। निरुपाय वे दोनों पराजित सैनिकों के समान क्लान्त भाव से लौट पड़े। हुलासी की विमाता ने घी, मिष्टान्न आदि को अपने लिए भेजा हुआ उपहार मानकर रख लिया और खिलौने, नये कपड़े आदि को अपने बच्चों का प्राप्य समझकर उन्हें बांट दिया।

इस प्रकार हुलासी अकिञ्चन बन कर ही गुंगिया के पास लौट सका था। उस बेचारी ने बालक के आहत हृदय को अपनी ममता के लेप से अच्छा करने में कुछ उठा नहीं रखा।

इसके अतिरिक्त उसकी प्रिय वस्तुओं को एकत्र करने के लिए वह एड़ी-चोटी का पसीना एक करने लगी। पर बालक के कोमल हृदय में विश्वास का जो तार टूट गया था उसका जुड़ना सहज नहीं था। जो कुछ अप्राप्य है उसी को पाने के लिए मनुष्य विकल होता है, इसी नियम से हुलासी का हृदय भी पिता, भाई, बहिन के लिए रोता रहता था।

गुंगिया के घर-द्वार और धन के लिए ही पिता ने उसे नहीं रखा, उसके

न रहने पर ही वे सब साथ रह सकेंगे आदि विचार भी उसके हृदय को विषाक्त करते रहते थे।

इस तरह दो वर्ष और भी बीत गए। जब हुलासी कुछ स्वस्थ होकर गुंगिया के काम में हाथ बटाने लगा था तभी उसके परिहासप्रिय दुर्भाग्य से एक बाबाजी अपने दो तीन शिष्यों के साथ वहां आ पहुँचे। वे पर्यटन-क्रम में वहां आये थे, परन्तु चतुर्मास बिताने के लिए ठाकुर की अमराई में डेरा डाल कर वर्षा बीतने की प्रतीक्षा करने लगे।

ऐसे बाबा बैरागियों का आगमन गांव वालों के लिए महान घटना है। कोई दूध की दोहनी भेंट करता था, कोई घी की हंडिया। कोई पका काशीफल उपहार में दे जाता था, कोई गुड़ की भेली। कोई पुराना चावल रख जाता था, कोई चक्की का पिसा, सफेद गेहूं का आटा। कोई मालपुओं का भण्डारा करने की इच्छा प्रकट करता था, कोई खीर पूरी के भोज की।

यह सब अभ्यर्थना निस्वार्थ ही नहीं होती थी। सेवा करने वाले भक्तों में से सभी एक न एक वरदान चाहते थे। किसी को बुढ़ौती में पुत्र चाहिए। किसी को और अधिक धन की आवश्यकता थी। कोई अपने पट्टीदार को हराना चाहता था। कोई अपने सगे भाई को विरक्त करने के लिए उच्चाटन मंत्र मांगता था। कोई किसी को वश में करने के साधन का जिज्ञासु था। कोई रहन रखे हुए खेत को बिना रुपया चुकाये लौटाने का उपाय पूछता था। कोई गिरवी रखे गहने को हथियाने के लिए कर्जदार में चित्त-भ्रम उत्पन्न करने का इच्छुक था। कोई बिना औषध के ही रोगमुक्त होने की याचना करता था। सारांश यह कि भक्तों में प्राय. सभी कोई उचित या अनुचित अभिलाषा छिपाये हुए बाबाजी के सामने हाथ जोड़े बैठे रहते थे।

बाबाजी तो मानो 'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास' को चरितार्थ करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। तम्बाकू के पिण्ड जैसे काले शरीर

में राख का अंगराग लगाकर, नकली जटा-जूट का मुकुट धारण कर और चिमटे का राजदण्ड थाम कर वे एक कुशासन पर आसीन होकर इन याचकों के दरबार का संचालन करते। उनके दान की प्रणाली भी कम रहस्यपूर्ण नहीं थी। किसी याचक की ओर प्रसन्न मुद्रा से देख भर लेते, किसी को हाथ के संकेत से आश्वासन देने का अनुग्रह करते, किसी के प्रति, चिमटा खनका कर, असन्तोष व्यक्त करते, किसी को धूनी में से चुटकी भर विभूति देकर सन्तुष्ट कर देते ; इस प्रकार न उनके पास से कोई पूर्णत निराश लौट सकता था न कृतार्थ।

जिसकी याचना की ओर उनकी लेशमात्र भी उपेक्षा देखी जाती थी वह दुगने उत्साह से उनकी सेवा में लग जाता और जिस पर वे विशेष कृपालु रहते थे वह उस कृपा को स्थायी बनाये रहने के लिये और अधिक उपहार लाता रहता।

स्त्री याचकों के प्रति उनकी कृपा स्वाभाविक रहती थी। कोई ग्रामवधू जब अपने पति की अवज्ञा या अपनी सन्तानहीनता की दुख-गाथा सुनाती तब उनकी गांजे के नशे से अरुण आंखें और अधिक अरुण हो आतीं।

तीन चार किशोर शिष्य उनकी सेवा में दिन रात एक किये रहते थे। उनमें कोई कौपीनधारी था, कोई अंगौछा लपेटे घूमता था। कोई मुण्डित शिर था, किसी की नकली नई जटा सिर से खिसक खिसक जाती थी। कोई उनके लिए प्रसाद लाते लाते बीच में थोड़ा चख लेता था और कोई चिलम भरते भरते एक दम लगाये बिना न रहता। गांव के कुतूहली लड़के बाबाजी को घेरे ही रहते थे। इन्हीं के साथ हुलासी भी वहां आने जाने लगा।

बाबाजी मुखमुद्रा, व्यवहार, कथोपकथन आदि से बहुत कुछ जान लेने की शक्ति रखते थे। हुलासी के संबंध में वे कितना जान चुके थे यह कहना तो कठिन है पर एक दिन उसे प्रथम बार देखने का अभिनय

करके वे बोल उठे--'अहा तू तो बड़ा सिद्ध पुरुष होने वाला है बच्चा! तेरा ललाट तो दगदगाता है पर तेरे मन में--जरा पास आ, तेरी भाग्यरेखा तो देखूं!'

अजगर की सांस जैसे उसका आहार बनने योग्य जीवजन्तुओं को खींच लाती है वैसे ही बाबाजी की दृष्टि हुलासी को निकट खींच लाई। फिर इस आकर्षण से वह कभी मुक्त न हो सका।

गुंगिया ने भी बाबाजी के पास तिल, गुड़, तेल आदि की सौगात भेजी थी, परन्तु उनसे कुछ पूछने के लिए न उसके पास वाणी थी न इच्छा। हुलासी जब वहां रात दिन पड़ा रहने लगा तब उसे चिन्ता हुई। एक दिन वह बाबाजी के सामने ही उसे हाथ पकड़कर घसीट लाई पर दूसरे दिन वह उसकी आज्ञा की उपेक्षा करके फिर वहीं जा पहुंचा। कोई उपाय न रहने पर उसने बाबाजी के सामने फटा आंचल फैला कर अपने एकमात्र बालक की भिक्षा मांगी।

बाबाजी चाहे करुणार्द्र हो गए हों चाहे उन्होंने परिहास किया हो, पर यह सत्य है कि उन्होंने हुलासी को घर जाने और वहां कभी न आने की आज्ञा देकर दीर्घ निश्वास लिया। हुलासी तब से वहां नहीं देखा गया।

चतुर्मासा पूरा होने के कुछ दिन शेष रहते ही एक दिन सवेरे गांववालों ने अमराई को सूना देखा। बाबाजी सम्भवत: रात ही में चले गए थे। उनके जाने का समाचार सुनकर और हुलासी के बिछौने को खाली देखकर गुंगिया ने अपना कपार पीट लिया। गांव में कहीं उसे न पाकर वह कई मील तक रोती बिलखती दौड़ी चली गई, पर बाबाजी का कोई चिन्ह नहीं मिला। कुछ दिन बाद पता चला कि उसी रात को ऐसी एक साधुमंडली चार पांच मील दूरस्थ स्टेशन से रेल पर सवार होकर चली गई है। पर इससे अधिक समाचार पाना सम्भव न हो सका।

गुंगिया का दु:ख भी गांववालों के कौतुक का कारण वन गया था। कोई चिढ़ाता 'वावा जी आये गुंगिया !' कोई परिहास में कहता 'हुलासी का तार आया गुंगिया !' कोई व्यंग करता 'और दूसरे का बेटा लेकर लड़केवाली वन !'

पर गुंगिया हुलासी की प्रतीक्षा के अतिरिक्त और कुछ न जानती थी, न समझती थी। वह गांव के लड़कों में न जाने किसे खोजती रहती। नया खिलौना देखते ही खरीद लाती और लाल पिटारी में सँभाल कर रख देती। नया कपड़ा देखते ही हुलासी के नाप का कुरता सिलवा लेती और तह करके अपने काठ के सन्दूक में धर देती। हुलासी को अच्छी लगने वाली मिठाइयां देखते ही मोल ले लेती और सींके पर रख आती। कभी कभी रात के सन्नाटे में द्वार खोल कर किसी के आने की आहट सुनती। उसे पूर्ण विश्वास था कि हुलासी निश्चय ही एक दिन उसके पास लौट आवेगा पर वह नहीं लौटा तो नहीं लौटा।

जव मैंने गुंगिया को देखा तव यह घटना वारह तेरह वर्ष पुरानी हो चुकी थी। हुलासी को उसकी गुंगी मौसी के अतिरिक्त सारा गांव भूल चुका था।

अचानक, कई वर्षों के उपरान्त गांव लौटे हुए एक व्यक्ति ने वताया कि हुलासी कलकत्ते में एक सेठ का दरवान हो गया है। उसने विवाह करके गृहस्थी वसा ली है और उसके कई वच्चे हैं।

इस समाचार में सत्य का कितना अंश था यह तो कहने वाला ही जाने पर गांववालों ने इस दन्त-कथा में भी गुंगिया को चिढ़ाने का साधन पा लिया। अव हुलासी वड़ा आदमी हो गया है, अव वह गुंगिया को शहर दिखायेगा, मोटर में घुमायेगा आदि कह कर वे परिहास करने लगे, पर गुंगिया के लिए परिहास भी सत्य था।

भागकर कभी मा की खोज-खबर तक न लेने वाले बेटे पर क्रोधित होना तो दूर की बात है वह उसके प्रति और भी अधिक ममतामयी हो उठी।

उसका लड़का न जाने कितने कष्ट से दिन बिताता होगा। उस परदेश में किसने उसकी भूख प्यास की चिन्ता की होगी, किसने उसके कपड़े लत्ते का ध्यान रखा होगा! उन वैरागियों की टोली ने अवश्य ही उसे घुघ्घू का मांस खिला कर घुघ्घू बना लिया था। जब उसे घर की सुधि आई होगी तब लौटने के लिए रुपया पैसा ही न रहा होगा। अब अवसर मिलते ही वह भला आदमी बन गया। गुंगिया अम्मा जीती है इसे वह कैसे जान सकता है! गांव में किसी को लिखते हुए उसे लाज लगती होगी। फिर इतने वर्षों के बाद उसे कौन पहचानेगा यही सोच कर उसने न लिखा होगा। पर उसकी गुंगिया अम्मा को तो उसे पत्र लिखना ही चाहिए। उसका समाचार पाते ही वह दौड़ा चला आवेगा। बहू भी आवेगी ही। बच्चे क्या दादी को देखने के लिए हठ न करेंगे? इसी प्रकार के विचारों में डूबती उतराती गुंगिया एक दिन पत्र लिखवाने की इच्छा कर बैठी।

पर उसका पत्र लिखना सहज नहीं था। 'सिद्ध श्री सर्वोपमा योग्य श्री हुलासी तेली को उसकी गुंगिया अम्मा की आशीष पहुँचे' लिखने के बाद गाड़ी रुक गई। तुमने भाग कर बहुत बुरा किया, क्या यह लिखूं, पूछने पर गुंगिया ने तर्जनी दिखा कर मना किया। तुमने जो कुछ किया अच्छा किया क्या यह लिख दूं, पूछने पर गुंगिया ने सिर हिला कर अस्वीकृति प्रकट की। तुम्हारी गुंगिया अम्मा बारह बरस से तुम्हारी राह देख रही है, क्या यह लिखना चाहिए, पूछने पर गुंगिया की अनुकूल सम्मति प्राप्त हुई। बस इसी प्रकार नौसिखिये कवि के समान वाक्य जोड़ जोड़ कर तोड़ तोड़ कर मैंने पत्र समाप्त किया।

पता किसी को ज्ञात नहीं था इसी से श्री हुलासीदीन तेली, कलकत्ता,

लिखकर गुंगिया से पिण्ड छुड़ाया। चिट्ठी वह स्वयं डाल आई। पर इतने ही से मुझे छुट्टी न मिल सकी क्योंकि गुंगिया जहां तहां मुझे घेर कर उस डेड लेटर ऑफिस में खोये हुए पत्र के उत्तर के सम्बन्ध में अनेक संकेतात्मक प्रश्न करने लगी।

मेरी एक सहपाठिनी उन्हीं दिनों कलकत्ते में रहकर डाक्टर युनान से अपनी चिकित्सा करा रही थीं। उन्हीं को मैंने गुंगिया की कथा लिखकर हुलासी को खोजने का काम सौंपा। एक सप्ताह बाद उनका जो उत्तर मिला वह व्याजनिन्दा से भरा हुआ था। बिना पता ठिकाना बताये हुए उस जन-समुद्र में हुलासी जैसे अकिंचन व्यक्ति को खोज लेने की मैंने जो कल्पना की है वह मेरी अगाध नासमझी का परिचय देती है। ऐसा व्यवहार ज्ञान-शून्य व्यक्ति लोक-समस्या में अपने आपको न उलझाकर ही सुखी हो सकता है। हुलासी के पते के स्थान में यह सब उपदेश सुनकर मेरा मन खीझ उठा तो आश्चर्य नहीं।

कुछ दिन और बीत गए। इसी बीच गुंगिया बीमार पड़ गई। उसे कई महीनों से जीर्ण ज्वर आ रहा था जिसकी परिणति क्षय में हुई। जब वह खटिया से लग गई तभी उसने काम करना बन्द किया। ज्यों ज्यों खांसी और कफ का कष्ट बढ़ता गया त्यों त्यों आने जाने वालों की संख्या घटती गई। एक दूर का सम्बन्धी गुंगिया के बैल, कोल्हू आदि का प्रबन्ध करता था और उसकी कन्या रोगिणी की थोड़ी बहुत सेवा-टहल कर जाती थी।

जब कभी मैं गुंगिया को देखने पहुंच जाती तब वह अपनी थकावट की चिन्ता न करके विविध संकेतों और चेष्टाओं द्वारा हुलासी के पत्र की बात पूछती।

इन्हीं दिनों सहपाठिनी का पत्र आया। उन्होंने लिखा कि हरभजन नामक नये नौकर को हुलासी को खोज निकालने का काम सौंपा गया

था। हुलासी का तो अब तक पता न चल सका, पर गुंगिया के सम्बन्ध में सब जानकर हरभजन बहुत दुखी हुआ है। उसका घर भी उसी ओर किसी गांव में है और वह भी दस बारह वर्ष पहले अपनी मां को बिना बताये भाग आया था। अब उसकी मां मर चुकी है। पर गुंगिया को सुख पहुंचाकर वह अपनी मां की आत्मा को सन्तोष दे सकेगा ऐसा उसका विश्वास है। तीसरा दर्जा पास होने के गर्व में वह स्वयं उल्टा-सीधा पत्र लिख रहा है। गुंगिया को वह कुछ रुपया भी भेजना चाहता है। उसकी ओर से मालकिन ही भेज दें, यह प्रस्ताव उसे पसन्द नहीं, क्योंकि वह अपने पसीने की कमाई में से देना उचित समझता है। सत्यवादी बने रहने के प्रयास में मैं उस मरणासन्न मां का क्षणिक सन्तोष न नष्ट करूंगी ऐसी उन्हें आशा है।

एक सप्ताह के उपरान्त हरभजन का पत्र और उसके भेजे दस रुपये भी मिल गए। कलकत्ते से समाचार आया है, सुनकर ही गुंगिया ने भेजने वाले को हुलासी समझ लिया। इसीसे उससे न सत्य कहने की आवश्यकता हुई न असत्य कहने की। हरभजन के पत्र में भी न भेजने वाले का पता चलता था न पाने वाले का। कोई भी ग्रामीण पुत्र अपनी मां को जो कुछ लिख सकता है वही उसने लिखा। "मइया हम जनम जनम सेवा करिकै तुमसे उरिन नाहीं हुइ सकित है। तुम तौ हमार लेखे बिधना हौ। हमार मति बौराय गई नाहि त हम तुम्हार अस महतारी छाड़ि कै देस परदेस काहे भटकत फिरत। अब हम तुम्हरे चरनन मा आउब जरूर। छुट्टी मिलै भर की देरी समुझौ। तुम कौनिउ परकार की चिन्ता न करौ। तुम्हार आसिरबाद हमरे ऊपर छतर अस छावा रहत है। हम कउनौ बिपदा मा न पड़ब। तुम्हार बहुरिया और पोता पालागन भेजत है।"

गुंगिया ने उस मैले फटे कागज के टुकड़े को अस्थिशेष उंगलियों में दबा कर पंजर जैसे हृदय पर रख कर आंखें मूंद लीं। पर झुर्रियों में सिमटी

मुँदी पलकों के कोनों से बहने वाली आँसू की पतली धार उसके कानों को छूकर मैले और तेल से चीकट तकिये को धोने लगी।

इसके एक मास बाद वह हुलासी के खिलौनों की खुली पिटारी और कपड़ों से भरे बक्स के बीच में मरी पाई गई। रुपये उसके तकिये के नीचे ज्यों के त्यों धरे मिले।

हरभजन के सम्बन्ध में और अधिक जानने का मैंने प्रयत्न किया, पर वह मालकिन के साथ इस ओर लौटा नहीं और वहाँ उसे खोजना हुलासी को खोजने के समान ही असम्भव है।

जीवन में मैंने जितने विचित्र व्यक्ति और जैसे रहस्यमय इतिवृत्त देखे सुने हैं उनके सामने कल्पना के सभी निर्माण फीके पड़ सकते हैं। पर गुंगिया मेरे हृदय में जो करुण विस्मय जगा सकी थी वह फिर नहीं जागा। मेरा पत्रलेखन क्रम टूटा नहीं। तब मैं अपने विनोद के लिए दूसरों की जीवन-कथा लिखती थी और अब दूसरों के सुख-दुःख पढ़ती हूं गुंगिया जैसे व्यक्तित्व को खोजने के लिए। पर संसार में अज्ञान की जितनी आवृत्तियां होती हैं उतनी ज्ञान की नहीं, इसी से जीवन रहस्य की झलक देने वाले क्षणों का प्रत्यावर्त्तन भी सहज नहीं।

कभी कभी सोचती हूँ वह वात्सल्य की अवाक् पर चिर-स्पन्दनशील प्रतिमा क्या मेरी स्मृति में अकेली रहेगी!